वर्ष ६, अंक ६

श्रीकृष्णाय नमः

फाल्गुण पूर्णिमा १९८८

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

Gita Press, Gorakhpur

भगवान् राम

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, फाल्गुन पूर्णिमा सं० १९८८ | अंक ६ पूर्ण संख्या ६६

वेदोपदेश

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समा हितम्॥ १॥

ईश्वर में नाम और रूप है। ईश्वर में पृथिव्यादि लोक रक्खा है। ईश्वर में इन्द्र विजयी और अग्नि है उच्छिष्ट के अन्दर सब जगत समा रहा है॥ १॥

उच्छिष्टे द्यावा पृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः॥ २॥

ईश्वर में द्युलोक, पृथिवी सब बना हुआ वस्तु मात्र रहा है। ईश्वर में जल, समुद्र, चन्द्र और वायु रहा है॥ २॥

शर्करा सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणाः।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे शंश्रता श्रिताः॥ ३॥

मिट्टी बालुरेत, पत्थर, औषधी, बनस्पति, घास, बादल मेघ बिजली, वृष्टि ये सब ईश्वर में ठहरते हैं। अर्थात् घास के तिनके से लेकर आकाश तक सब पदार्थ उसी के आश्रय से हैं ॥ ३ ॥

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टा जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ ४ ॥

जो प्राण से जिन्दा है, और जो आंख से देखता है,वह सब ईश्वर से उत्पन्न हुये हैं आकाश द्युलोक में रहे हैं ॥ ४ ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ ५ ॥

देव, पितर, मनुष्य गन्धर्व, अप्सरा सब उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए हैं और वे सब प्रकाश मय लोकमें ठहरे हैं ॥ ५ ॥

आत्म- समर्पण

[ले० श्री मोहन लाल जी]

भय, बाहर की वस्तु नहीं है, मनुष्य के अन्तर-जगत् की प्रवृत्ति है। जितने प्रकार के अमङ्गल हैं वे हमें वास्तव में बहुत अधिक भयानक लगते हैं। जो विपत्ति अभी आई नहीं, उसकी सम्भावना करके ही हम व्याकुल हो उठते हैं। जो दुःख थोड़े-समय के लिये होता है, उसके भय से हम जीवन-पर्यन्त कांपते रहते हैं। दूसरे प्राणी मृत्यु-समय कुछ-कष्ट अवश्य पाते हैं, पर मनुष्य की तरह स्वस्थ-दशामें भविष्यत की मृत्यु- मूर्ति की कल्पना कर भय-विह्वल नहीं होते। इच्छित वस्तु, शायद न मिले, हमारी आशा शायद पूर्ण न हो, किसी बन्धु का कोई अमङ्गल न होजाय, किसी से वियोग न होजाय, इस प्रकार की अनेक चिन्ताओं से हम व्याकुल रहते हैं।

अन्य जीव-जन्तुओं से मनुष्य कितना श्रेष्ठ है, यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता। परन्तु यह श्रेष्ठताही मनुष्य के अधिकांश दुःखों की कारण होगई है। यदि हमारे में आत्मज्ञान या भविष्यत का विचार करने की बुद्धि न होती तो इतना उद्वेग और ऐसी उत्कण्ठा भी नहीं रहती। यदि मनुष्य-हृदय में प्रेम की मधुर धारा का प्रवाह न बहता तो शोक और विरह-दुःख का स्थान ही नहीं मिलता। यदि विवेक नामक कोई वस्तु न होती तो लज्जा और अनुताप के दुःख से दुःखी होने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ये सब दुःख पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, आदि को स्पर्श भी नहीं करते। जिन शक्ति और प्रवृत्तिओं के कारण मनुष्य अन्य जीवों से श्रेष्ठ गिना जाता है, उन्हीं शक्ति और प्रवृत्तिओं ने मनुष्य को नानाप्रकार के दुःखों के फंदे में फंसा लिया है। विधाता ने मनुष्य को महान उच्च पद का अधिकार देकर, उसके साथ बहुत प्रकार के दुःख और कष्टों को भी जोड़ दिया है।

हां! जिन अधिकारों के कारण मनुष्य की उच्चता है वेही सब शोक, उद्वेग और भय के मूल अवश्य हैं, पर तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह अधिकार न होने से अच्छा रहता। क्योंकि येही शक्ति और प्रवृत्तियां मनुष्य को स्वर्गीय शान्ति का प्रदान करने वाली होती हैं जिस ज्ञान और बुद्धि के द्वारा हम सम्पूर्ण पदार्थों की अनित्यता, चञ्चलता-क्षणिकता का अनुभव करते हैं। वे ही हमें नित्य और निर्विकार ईश्वर के निकट पहुंचाने में सहायक होती हैं।

हमारे हृदय में प्रेम की अटूट-धारा बहती है और इसी कारण स्वजन-मृत्यु हमारे लिये इतने शोक और दुःख की बात है पर वही स्नेह और प्रेम हमें बतलाता है कि शरीर के नाश होने से आत्मा का नाश नहीं होता। एवं पृथ्वी पर जिनसे हमारा वियोग हो रहा है उनसे सदा के लिये हम दूर नहीं होते। जब हम कोई बुरा काम करते हैं तो हमें विवेक की धिक्कार सहनी पड़ती है। पर वही हमें सचेत कर देता है कि देखो, तुम्हारे में उस प्रकाश का अभाव होगया है, जिसके न होने से तुम्हारा हृदय इस घोर अन्धकार से आच्छादित होगया है। अतः मनुष्य की ये विशेष शक्तियां जो इसे गंभीर शोक समुद्र में डालती हैं वेही बड़े आश्चर्य के साथ इसे धर्म विश्वास में दृढ़ और एक निष्ठ बनाती हैं। इन्हीं शक्तियों के द्वारा हमें शोक और सन्ताप के भीतर से उस अशरण शरण के सुखद चरण कमलों का आश्रय स्थल प्राप्त होता है। और उस जीवन-धन के दिये हुए धर्म-विश्वास से ही हम उस परमपिता की शरण होकर जिस प्रकार निश्चिन्त और निर्भय होजाते हैं, ऐसे और किसी प्रकार किसी योनि में नहीं हो सकते।

विश्वास के पास भय नहीं ठहरता। जो वास्तविक सच्चा विश्वास करलेता है, वह भय से अतीत हो जाता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सांसारिक साधारण विपत्तियां उसे नहीं होती। नहीं। स्वाभाविक मनुष्य जीवन की विपत्तियों के वह भी आधीन रहता है। वह यह कामना नहीं रखता कि ये सांसारिक विपत्तियां उसे प्राप्त न हों और न वह उस प्रभु से यह प्रार्थना ही करता है कि महामारी से नष्ट होते हुए देश में मैं बचजाऊं या अनावृष्टि से भीषण अवस्था वाले देश में केवल मेरा ही खेत प्रचुर वृष्टि से पूर्ण हो जाय अथवा जीवन में कोई आपत्ति, विपत्ति दुःख वा प्रलोभन न आवे और आवे तो भगवान् उसे अलौकिक उपकारसे दूर करदें। ऐसी कोई सांसारिक सुविधा प्राप्त करने की प्रार्थना करना वह लज्जा और दुःख की बात समझता है, इसकी आशा भी उसके लिये अधर्म है। विशेष अधिकार मात्र ही मनुष्य को सर्वसाधारण से अलग कर देता है। विश्वासी भक्त के हृदय में यह विश्वास रहता है कि समस्त संसार एक ही परिवार है, इसमें किसी प्रकार के विशेष अधिकार या सुयोग का, जिससे विराट् भातृ मण्डली वञ्चित रह कर केवल हम ही उपयोग करें, तो हमारे ही परिवार के साथ हम विश्वासघातकता करेंगे। परमपिता के प्रत्येक प्रारम्भ में भक्त अपना मङ्गल सोच कर अवनत मस्तक उसे सादर स्वीकार करता है। वह उसके बदले में सांसारिक सुख-सौभाग्य की कोई वस्तु उसके मूल्य के बदौलत प्राप्त करने की इच्छा नहीं करता साधारण मनुष्य जीवन की स्वाभाविक आपत्ति दुःख और कष्टों से विश्वासी भक्त भी वञ्चित नहीं रहता। उनके प्राप्त होने की पूर्ण सम्भावना उसे भी रहती है। उसी प्रकार विश्वासी भक्त का भविष्य का भी अनिश्चित और अन्धकार पूर्ण

ही है। पर वह अपने प्रभु पर पूर्ण-विश्वास रख कर उस अन्धकार में रहने के लिये तैयार रहता है। भविष्य जानने की उद्विग्नता उसे नहीं सताती। वह सम्पूर्ण रहस्यों का जानने वाला, या सम्पूर्ण तत्वों की मीमांसा कर, संशय हीन होगया हो यह बात नहीं होती, पर वह भगवान् के मंगलमय स्वरूप पर और उसकी पूर्ण दया पर निश्चिन्त और निर्भय रहता है। नीरव एकान्त का ध्यान और करुण प्रार्थना ही उसका सम्बल होती है। भगवान् की इच्छा को ही वह मंगल कर समझ कर वरण करलेता है, बस, साधारण मनुष्यों से उसमें यही सब से बड़ा भेद रहता है।

बुद्धि के प्रकाश में किसी तत्व के निर्णय करने का नाम ही प्रकाश है और प्रेम की ज्योति में किसी तत्व में उपनीत होजाने का नाम ही विश्वास। ज्ञान, जगत् की प्रत्येक घटना को लेकर आलोचना करे एवं जो नित्य-पूर्ण-सत्य हो उसी को विश्वास का अवलम्ब बनावे। प्रकृति रूप महाकाव्य के एक एक श्लोक को समझने की चेष्टा करे। एवं इस महाकाव्य को समग्र दृष्टि से देखना ही विश्वास का लक्ष्य होना चाहिये। कभी कभी हम प्रकृति को निष्ठुर और निर्भय मूर्ति को और कभी उसकी मूर्ति को देख कर हम भय-विह्वल हो उठते हैं। उस समय हम भगवान् के मंगलमय अभिप्राय को भूल जाते हैं। पर ज्ञान के द्वारा फिर हम समझते हैं यह सभी जगत् की उन्नति का मार्ग है। एवं इस-पर विश्वास होने से हमें भगवान् की प्रत्येक लीलाओं में, इस जगत् की प्राकृतिक हरेक घटनायें मंगल दिखलाई पड़ने लगती हैं, क्योंकि वहां अमंगल के लिये स्थान ही नहीं रहता। इसी मंगल भाव की गम्भीरता में डूब कर वह संसार के दुःख कष्टों की कथा को भूल जाता है।

वर्षा, मेघ और बिजली के ऊपर निर्मल आकाश है। और उसी आकाश में चिरस्थिर, चिर-स्निग्ध तारक मण्डली शोभायमान हो रही है, यह कहना जिस प्रकार सत्य है, जीवन के दुःख और कष्टों के पीछे सौन्दर्य शृंखला और मंगल छिपा हुआ है यह बात भी उतनी ही सत्य है।

इस असीम संसार में साधारण मनुष्य अपनी क्षुद्रता को देख कर ज्ञान बुद्धि से अव-सन्न हो जाता है, पर विश्वासी भक्त इसी क्षुद्रता के ज्ञान से अपने को अनन्त का आश्रित समझता है, फिर वह विपत्तियों के समुद्र से भय-भीत नहीं होता, उसे अपने अकेले होने का डर नहीं रहता, वह तो प्रसन्न चित्त से विपत्ति-समुद्र में गोते लगाने लगता है और अपने प्रभु के चरणों में मस्तक रखकर कहता है कि 'हे नाथ तू ही मेरा रक्षक और तू ही मेरा आश्रय स्थल है'। उसे पूर्ण विश्वास रहता है, वह अच्छी प्रकार जानता है कि भले ही आकाश से सूर्य और चन्द्र नष्ट हो जाँय पर उस प्रभु की प्रेम पूर्ण दृष्टि उसके ऊपर से विचलित नहीं हो सकती। वह मृत्यु यन्त्रणा को अमृत लोक में जन्म पाने की वेदना जान कर सादर वरण करता है। विपत्तिकाल में बाहरी धैर्य दिख-लाना खूब कठिन या खूब सहज नहीं है पर विश्वासी भक्त के सिवा हृदय में सच्ची शान्ति और निश्चि-न्तता का भाव पोषण करना दूसरे के लिये असम्भव ही है। भक्त को आपत्ति भगवान् के चरण कमलों में दृढ़ बन्धन से बान्ध देती है।

पर आज प्रकृति यदि गम्भीर ध्वनि से घोषणा करदेती कि, ऐ दुर्भागी मानव, भगवान् मेरे रक्षक और आश्रय स्थल हैं' यह तेरे मन की केवल झूठी कल्पना मात्र है, तू तो प्रकृति के खेल का एक खिलौना ही है' वज्र यदि काले मेघों के

वक्षस्थल पर विद्युत के अक्षरों में लिख देता कि यह जगत् अराजक है, ईश्वर कोई वस्तु तेरे ऊपर कोई नहीं, तू ही विश्व का श्रेष्ठ पुरुष है, तो भक्त को खड़े रहने के लिये स्थान ही नहीं मिलता, उसका निश्चिन्त और निर्भयता का भाव निराशा के घोर अन्धकार में लीन हो जाता।

पर भगवान् की मंगल-कृति में विश्वास रहने से ही मनुष्य आज प्रकृति के रुद्र रूप से नहीं डरता भगवान् के न्याय-विधान पर भरोसा होने के कारण ही वह दुष्ट की भ्रुकुटी को भी तुच्छ कर सकता है। भक्त असत्य और अत्याचार के विरुद्ध अकेला खड़ा होने में समर्थ होता है, दुर्जन के तर्जन-गर्जन से उसका प्रसन्न ललाट मलिन रेखा से विभूषित नहीं होता। उसकी दृढ़ता विनय के वर्ण में अनुरञ्जित रहती है, अन्य मनुष्यों की तरह स्पर्धा से पूर्ण नहीं होती। दृढ़ता की मूल से भगवान् की इच्छा रहती है, भक्त की अपनी इच्छा नहीं। प्रभु के आदेश को मस्तक पर धारण कर निर्भय होते हुए भी विनीत रहते हैं। भय के मूल में स्वार्थ नाश की सम्भावना रहती है और विश्वास के मूल में दूसरे के प्रति श्रद्धा और सम्मान।

पर यह शंका होती है कि एक विशेष स्थल है जहाँ धर्म मनुष्य को निर्भय न बनाकर डरपोक बना देता है, पाप करके मनुष्य भगवान् के नाम से भयभीत होता है और उसे भुलाने की चेष्टा करता है। परन्तु असल में हम उसको भूलना नहीं चाहते उससे अलग होने की इच्छा नहीं रखते अपने पास ही से अलग होने की विफल चेष्टा किया करते हैं। उस परम दयालु के नजदीक जाते हमें संकोच होता है, 'वह हमें अवश्य ग्रहण करेगा' ये बातें सोच कर हम जितनी ही दृढ़ता, विश्वास अपने हृदय में करते हैं, उतना ही हमारा संकोच और बढ़ जाता है, वह, हमें उसके मुख की ओर एकबार भी नहीं देखने देता। उस समय महात्मा ईशु की कही हुई, उस अपव्ययी छोटे लड़के की कहानी याद करिए, वह उद्धत युवक धनी का पुत्र था। स्वेच्छा पूर्वक घर छोड़, विदेश में मौज उड़ाने चला गया था। उसने वहां उच्छृंखल जीवन बिता कर थोड़े दिनों में ही सारे धन को नष्ट कर दिया। अन्त में ऐसी दुर्दशा में फंसा कि सूवर चरा कर और उनका झूठा खाकर वह दिन बिताने लगा। इस कष्ट के एक दम असहनीय होने पर एक दिन वह युवक उत्साह हीन हो अपने वृद्ध पिताके चरणों में लौट आया। पितृ-हृदय वात्सल्य पूर्ण होता है, उसको दूरसे ही देखकर दौड़ते हुए परम स्नेह से आलिङ्गन किया और खोये हुए पुत्र को पाकर, मरे हुए बच्चे को फिर जिन्दा देख कर घर में बड़ाभारी उत्सव मनाया। यह देख उस अनुतप्त युवाने वृद्ध पिता से लज्जित होते हुए कहा, पिता, मैं तुम्हारा पुत्र कहला कर परिचित होने के सर्वथा अयोग्य हूं, मुझे तुम्हारे नोकरों में रहने के लिये थोड़ी जगह देदो।' पर यदि वह हतभागा युवक घर लौट कर सुनता कि उसका पिता अब पृथिवी पर नहीं है तो क्या उसे इस आनन्द का अनुभव प्राप्त होता? पिता के चरणों में मस्तक रखकर रोते हुए क्षमा नहीं प्राप्त करने की यह बड़ा भारी असहनीय महान् दुःख, सारे जीवनभर रोने पर नष्ट नहीं होता। जो महापापी उस परम पिता परमेश्वर की ओर आंख उठा कर नहीं देख सकता, उसे जरा पूछो कि क्या संसार में भगवान् के न होने से अच्छा था? वह निश्चय कहेगा कि 'यह मत कहो' वह भी जानता है कि उसके रहने की अपेक्षा न रहना अनन्त भयानक था। जो निराशा के अथाह सागर में डूब गया है वह भी डूबते हुवे अन्त में उसकी

करुणा के ऊपर खड़ा होने को स्थान पाता है। पापी उससे डरता है पर सिवा उसके उसे और कोई जगह भी नहीं है। विश्वास से ही मुक्त है, विश्वास ही भय से परित्राण दाता है। पापी की शक्ति कितनी ही अन्धकार पूर्ण और दीर्घ क्यों न हो, पुण्यमय परमपिता के उदय से उस रात्रि का नाश अवश्य ही होगा। जो डरपोक हों, उनको साहस का सहारा लेना चाहिये। पाप के चन्द्रोदय से जिनका हृदय कमल मुरझा गया है उनको उसके चरण रूपी अंशुमाली का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। अन्त में हम यही कहेंगे कि वही हमारा एकमात्र बन्धु और वही हमारी एकमात्र गति है, उससे हम कभी भय नहीं करेंगे।

बसन्त

(ले० प्रभुदेव ब्रह्मचारी)

नूतन नवेली अलबेली उटकी है छवि,
　　रदन बदन छकि मूरतहु कन्त की।
प्रणय सहेली बहु भेली भई मृदुमणि,
　　गवनि ठवनि दुहुं लाजे द्विरदन्त की॥
कोरहु निकोर करि भोर विलगाव रही,
　　पेखहु अलीरी याहि सूरतहु वृन्त की।
सौरभ पराग नवरागहु सुहाग भरि,
　　चहुं ठौर व्यापि 'प्रभु' शोभा या बसन्त की॥

महान् संत नरसिंह म्हेता

(ले० श्री आदवजी महाराज)

गतांक से आगे।

एक बार उनके कुछ शत्रुओं ने ग्राम के राजा के कानों में यह फर्याद पहुंचाई कि हे राजन्! इस नराधम ढोंगी नरसिंह म्हेता ने सब गांव वालों को बिगाड़ रक्खा है इतने तक कि गांव की स्त्रियों ने इसकी दाम्भिक भक्ति से उलटा रस्ता ग्रहण किया है, और इसलिये प्रजा के लिये यह एक भयंकर दुष्ट मनुष्य है। इसकी योग्य तलाश ले, देश निकास की आज्ञा होनी चाहिये। ऐसी अनेक फरियादों से क्रोधित हो अपने सिपाहियों को म्हेताजी को पकड़ कैदी बना कचहरी में हाजर करने की आज्ञा दी। राज्य सिपाही सन्त के घर आ म्हेता जी को राजा का फरमाना सुना कैदी बनाया। ऐसा करुणा जनक और भय भरा बनाव देख उनकी विधवा पुत्र वधु व उनकी प्रिय पुत्री रोने लगीं। यह देख म्हेता जी उनको दिलासा से कहने लगे कि ऐसे समय रोकर अपने वैष्णव धर्म को कलंकित मत करो, क्योंकि इससे लोग अपने प्रभु की निंदा करेंगे, व अपनी भक्ति को कलंक लगेगा, धैर्य रक्खो मेरी रक्षा सर्व समर्थ और भक्तवत्सल भगवान् करेंगे। मुझे इतने दिन तो खुल्ले बजारों में व हजारों मनुष्योंके बीच प्रभु भजने का अवसर मिला था, तो अब मुझे एकान्त कैदखाने के घोर अन्धेरे में प्रभु भजने का सुअवसर मिलेगा, इसमें क्या बड़ी बात है। अपना परम कर्तव्य प्रभु की इच्छा के

आधीन रहना है,

अभी यह पुरा बोल ही न चुके थे कि सिपाही उनको धक्का मार मार राज कचहरी में लेगये। और राजाके सामने खड़ा किया। राजा क्रोध दृष्टि से म्हेता जी की तरफ लाल आंखें कर कहने लगा, नरसिंह! तैने मेरे सब गांव को बिगाड़ा है, इस कारण तेरी योग्य तलाश ली जायगी, जो तू सच-मुच ही अपराधी निकला, तो तेरा सिर इस तलवार से धड़ से अलग कर दिया जायगा। वाद विवाद के लिये मोटे संन्यासी व विद्वानों को बुलवाया, संन्यासी म्हेता जी को प्रश्न पूछने लगे। क्या आपने शास्त्र सीखा है? आप कैसी भक्ति करते हैं, और किस देव को मानते हैं। प्रश्नों के उत्तर में म्हेताजी ने केवल प्रभु नाम के गुण गाये, और कहने लगे मैं तो केवल प्रभु का नाम सीखा हूं, यह कह अपनी माला व ताल बजाये। संन्यासी कहने लगेः- यह तो केवल दम्भ और पाखंड है, इसमें कोई शास्त्रोक्त धर्म दिखाई नहीं देता, केवल छल कपट के बाहिरी देखावों से हे धूर्त्त! लोगों को ठगने और लूटने का ढौंग क्यों ले बैठा है। ब्राह्मणों के लिये ऐसे कर्म सर्वथा उचित नहीं है। संवाद विवाद ने उग्ररूप धारण किया, और म्हेताजी को ऐसी भक्ति को छोड़देने के लिये अनेकप्रकारों से समझाया गया धिक्कारों की वर्षा की, और राजा से प्राणान्त की आज्ञा का भय दिखाया, परन्तु ऐसे भय व दुःखों से म्हेता जी न डरे। उन्होंने अपना प्राण तो प्रभु नाम पर न्यौछावर कर दिया था, उनके नेत्र तो हर पल भगवान् के दिव्य रूप को निहारते थे, निदान संन्यासियों और राजाने म्हेता को निर्दोष कह उनको मुक्त किया।

हरिमाला नाम की पुस्तक में इस प्रसंग को ऐसा चमत्कारिक दर्शाया है, कि मांगलिक राजा के सारे दरबार में सभामीच साक्षात् भगवान् प्रकट हो अपने गले का दिव्य हार म्हेताजी को पहना संन्यासियों के गर्व को चूर्ण किया था, विपत्ति के प्रत्येक ऐसे अवसर पर शरणागत वत्सल प्रभु उनके दुःख दूर करने को हाजिर रहते थे। कहते हैं कि जब म्हेताजी अपने भाई व भाभी से रिसाय जंगल को तप करने गये थे, तब शिवजी उनकी उग्र तपस्या से प्रसन्न हो प्रत्यक्ष हुवे और अंतरिक्ष में अपने साथ ले के प्रभु श्रीकृष्ण के दर्शन कराये थे, भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके मस्तक पर हाथ रख धन्यवाद दे, अपनी भक्ति का जगत् में प्रचार करने की आज्ञा दी थी। और वचनबद्ध प्रभु उन्हें भक्ति करते जब जब संकट आया तब तब प्रत्यक्ष हो सहाय करते थे। इसके पश्चात् म्हेता जी अपने भाई के घर आये, और प्रभु भक्ति का प्रचार करने लगे, म्हेता जी के ऐसे चमत्कारिक प्रसंगोंका कवि प्रेमानन्दजी ने सुन्दर व्याख्यान गाये हैं जो लोकों में बहोत प्रेम से गाये जाते हैं।

एक समय जुनागढ़ में कोई यात्री जो द्वारकाजी जा रहे थे, पूछने लगे कि क्या यहां कोई ऐसे सेठ हैं जो हमें हुंडी लिख दें कारण हम द्वारका जी यात्रा जारहे हैं यह सुन शहर के कुछ मशकरों लिंगों ने नरसिंह म्हेता का घर बता कर कहा कि हमारे शहर में नरसिंह म्हेता जैसा कोई साहूकार नहीं है इसलिये आप उनके यहां जाइये वे हुंडी लिख देंगे। यह सुन वे भोले भाले यात्री म्हेता जी के घर पहुंचे, म्हेता जी इनको देख समझ गये कि इन गरीब बिचारे भोले मनुष्यों की मशकरी करने को मशकरों ने मेरे पास भेजा है। सन्त म्हेता जी ने रुपये ले द्वारका शांवलशाह शेठ के नाम से श्रीकृष्ण पर हुंडी लिख दी, दीनानाथ प्रभु तो अपने भक्तों की सहायता में

हर वक्त हाजिर रहते हैं, हुंडी स्वीकार ने में प्रभु ने शांवलशाह बणिया का रूप धारण कर हुंडी स्वीकारी।

अपनी पुत्री कुँवर बाई के माहरे भरने म्हेता जी के बाप का श्राद्ध करने, और उनके पुत्र का विवाह का अवसर आया तब इनकी स्थिती बहुत कंगाल थी तब अर्थात् इन तीनों प्रसगों में कृपालु श्री कृष्ण प्रभु ने मनुष्य रूप धारण कर उनका कार्य अनेकप्रकार के वस्त्रा भूषण दे सफल किया था। जो लोग चमत्कार को नहिं मानते और प्रभु निराकार हैं लौकिक समागम में नहीं आते ऐसा समझते हैं, वे ऊपरके बनावों को दूसरी तरह मानते हैं यानि ऐसा मानते हैं कि नरसिंह म्हेता के कोई प्रेमी और श्रीमंत् भक्त ने उनकी हुंडी स्वीकारी होगी, और उनके पुत्र के विवाह व कुँवर बाई के माहरे में तथा उसके बाप के श्राद्ध समय पैसा दे सहायता की होगी। सन्त म्हेताजी की दृष्टि ब्रह्ममय थी इसलिये जो कुछ उनको सहाय मिलती अथवा उनके कार्य में सफलता मिलती, वह सब ईश्वर ने ही की या उनकी सहायता से हुआ है ऐसा समझते हैं।

इधर जुने विचार वाले लोग, नरसिंह म्हेता की कथा के चमत्कार विभाग में प्रत्यक्ष भगवान् प्रकट हो सहाय करते थे ऐसा मानते हैं, परन्तु नई दृष्टि विन्दु से जोने वाले मनुष्य परमेश्वर के प्रेरक से उनका कार्य सफल हुआ मानते हैं। परन्तु नरसिंह म्हेता जी एक महान् सन्त थे यह सब कोई मानते हैं। उनके प्रेमभाव ने ही उनको महान सन्त बनाया था। वे प्रभु प्रेम में इतने तो अन्धे बने थे कि उन्होंने अपना पुत्र, स्त्री, जाति, इज्जत का कुछ भी ख्याल न किया और अनेक दुखों का सामना करके भी भक्ति न छोड़ी। अपने जीवन काल में वे मूर्ख समझे गये। और भी अपने को उन्होंने अपने बने हुए पदों में मूर्ख, अज्ञानी कहा है। परन्तु आज उनको कोई मूर्ख नहीं कहता परन्तु उनको प्रेमी कह उनके भक्तिज्ञान की सर्वत्र प्रशंसा हो रही है उनमें कबीर जैसा ज्ञान नहीं था, तुलसीदास जी जैसी काव्य शक्ति नहीं थी वह नानक जैसे सुधारक भक्त न थे अथवा उन्होंने मत पन्थ स्थापने का कोई विचार तक न किया। परन्तु वे एक गरीब प्रेमी भक्त थे जिनके हृदय में सदा प्रेम भक्ति रूपी अग्नि भड़कती थी, उनका मन्त्र, उनकी साधना, उनकी भक्ति उनका जीवन और मरण केवल प्रेममय था। उनके प्रेम का एक नमूना देखिये। घर बाप का श्राद्ध था, घी लेने बजार निकले थे, घी वालेने कुछ कीर्तन भजन करने की उनसे विनति की प्रेमांध नरसिंह जी घरकी व श्राद्ध की बात भूल संध्या तक प्रभु में लीन हो कीर्तन गाते घर न लौटे।

'रास मंडल' के बीच में खड़ा कर उनको जब जलती मसाल हाथ में दी गरम तेल के छींटे उनके हाथ पर पड़ रहे थे, और जब मसाल जल चुकी तो उनका हाथ जलने लगा था, परन्तु तो भी उनको अपने देह का भान न रहा ऐसी उनकी शुद्ध भक्ति थी। उनकी भक्ति शिव उपासना से शुरू हुई, पीछे से विष्णु की पश्चत् उनको जैसे पहिले तीन धारा में बहती आखिर त्रिवेणी एक धारा में बहती है वैसे ही, शिव, विष्णु या परंब्रह्म के बीच कोई फरक दिखाई न दिया। और द्वैत, अद्वैत; साकार निराकार वेदान्त और भक्ति सब सघन दीख पड़े। वे पुराणों के भगवत् अवतारों का गुण गान करते थे और उपनिषदों के परंब्रह्म तक दृष्टि पहुंचा सके थे। धर्म के मत भेदों की परस्पर विरुद्ध बातें उनको अग्राह्य व अरुचिकर नहीं लगती थी। इसी कारण से वे हिन्दुस्तान में सर्व-

सर्वमान्य सन्त गिने जाते हैं प्रत्येक मत पंथानुयायीयों को उनके उपदेश में से अपने लाभ की कुछ न कुछ शिक्षा मिल सकती है। जैसे वसन्तऋतु में फूलों के झाड़ खिलते हैं वैसे उनके समय में गुजरात में भक्ति रूपी फूलों के झाड़ खिले थे। आज कई शताब्दियें उनको हुए होगयी हैं तो भी उनकी वाणी के मीठे रस को लोग नहीं भूले हैं, और गुजरात के हरेक तीर्थों में व मंदिरों में और हरेक घरों में नित्य नये प्रेम से उनके कीर्तन आज तक गाये जाते हैं। केवल यही नही परन्तु उनके वाणी रूपी अमृतरस आज शहरों के घर छोड़, गावों की सीमा को उलांघ, बाड़ी वन कुछ, खेतों में काम करते किसानों व जंगल में बसते जंगलियों के मुख से टपक रहा है।

लोक प्रिय कंठस्थ साहित्य में हमेशा समय समय पर भक्तों व कवियों से फेर हुवा करता है, ऐसे ही इनके बनाये पदों व काव्यों में कुछ अन्तर दीख पड़ता है, नरसिंह जी कवि नहीं परन्तु प्रेमी भक्त थे। गुजरात के धार्मिक इतिहास में इनके समान एक भी लोक प्रिय धार्मिक पुरुष नहीं है। जिस गुजरात में एक दिन यह पागल रूप में गिने गये थे वही गुजरात आज इनके पद गा गा इनके दिव्य प्रेम में पागल बनी है। म्हेता जी के जीवन चरित्र की पूरी और खरी हकीकत का किसी भी ग्रंथ से पता नहीं लगता। इनकी जाति के नगर ब्राह्मणों ने इनको इनके जीवन काल में अनेक दुःख दिये थे परन्तु अब तो इनकी जाति के नगर ब्राह्मण अपनी जाति में नरसिंह जी एक महान् भक्त पैदा हुए थे ऐसा अभिमान रखते हैं। अस्पृश्यों के घर कीर्तन, भजन करने से उनके जाति वालों ने उनको जाति बाहिर किया था परन्तु एक समय जब उनकी जाती में भोजन था तब भोजन करते इनके हरेक जाति वालों के पास एक एक अस्पृश्य पंगत में साथ बैठा दिखाई दिया इसलिये जाति वालों ने भक्त को जाति बाहिर करने से भगवान ने कोप किया है ऐसा समझ उनको पीछे जाति में ले लिया था ऐसो एक चमत्कारिक कथन है। इनके जीवन काल में इनको कोई भी पहिचान न सके परन्तु इनके देहान्त बाद उनकी कीर्ती सर्वत्र फैली। जगत् में घोर अन्धकार हो जाने पर जैसे अनेक तारों के बीच चन्द्रमा शोभा देता है, वैसे ही संन्त भक्तों में आज म्हेता-नरसिंह जी चमकार करते दिखाई देते हैं।

करुण गुहार।

[ले० श्रीमती ब्रजकुमारी "विदुषी"]

क्षीर सागर में शैया पर रमा के संग सोये हो।
कालिन्दी तीर वन में क्या ग्वालन संग दौड़े खोये हो॥
किसी उर में छिपे चुम्बक से जाके क्या छिपाये हो?
गिरि शृंगों पे जाके क्या समाधि जा लगाये हो॥
रमण कर जा फंसे कुब्जा के मंत्रों से लुभाये हो।
देख नग्न द्रौपदी के क्या चीर में जा समाये हो?
अहो क्या! यशुमति के उलूखल से बंधाये हो?
किसी जन की अतुल राशी के वश होके बिकाये हो॥
जो मैं कब का रहा हूं टेर यह तुम सुन भी न पाये हो।
मेरी इन करुण गुहारों पर न तुम कुछ कान लाये हो॥
विरद बन्धन बन्धा के तुम क्या यहीं यह कहाये हो?
पतित पावन दयामय "ब्रज" ईश हो नाम धराये हो।

योग साधन

(१) अपनी इच्छाओं को कम करो दिनमें कई घन्टे मौन साधन करो। नित्य प्रति किसी पृथक् कमरे में एकान्त में वास करो और दो घन्टे भगवान् का भजन करो या किसी मंत्र का जप करो। किसी के साथ वाद विवाद न करो। अपना दूसरों से मुकाबला न करो नाम और किर्त्तिकी इच्छा को छोड़ दो। अगर तुम इन ६ साधनों का ६ मास तक अभ्यास करोगे तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुमको चित्तकी शान्ति प्राप्ति होगी। यदि तुमको अध्यात्मिक लाभ की प्राप्ति न हो या तुम्हारे बुरे स्वभाव में कुछ भी परिवर्तन न हो तो तुमको मुफ्त पर हंसने का अधिकार है। एक बार अच्छी तरह अजमायिश कीजिये।

(२) आलस्य और संशय योग में दो बड़ी भारी रुकावटें हैं। हलके सात्विक आहार और प्राणायाम से सुस्ती दूर हो जावेगी। पेट को अधिक न भरो, भोजन के पीछे आध घन्टे तक धीरे २ घूमो। जब तुमने एक बार दृढ़ निश्चय कर लिया तो उसको शीघ्रता से कार्य में परिणत करो चाहे कुछ भी हानि हो। ऐसा करने से संशय निवृत्त हो जावेगा और आत्मिक बलकी वृद्धि होगी।

३. ध्यान लगाओ। मन को शुद्ध करो। एकान्त कमरे में चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास करो, फिर उपनिषद् और गीता का ठीक अर्थ तुम्हारे हृदय से होने लगेगा। दोषयुक्त टीकाओं पर निर्भर न रहो। सच्ची लगन होने पर भगवान् कृष्ण और उपनिषद् के ऋषियों के यथार्थ संकल्पों को स्वयं ही समझ सकोगे और तुमको इस बात का पता लग जावेगा कि जिस समय उन्होंने यह श्लोक उच्चारण किए थे तो उनका क्या अभिप्राय था?

४. प्रतिज्ञा बहुत विचार कर करो परन्तु उसके पूर्ण करने में शीघ्रता करो। अपने वचनों का पालन करो चाहे कुछ भी हानि सहन करनी पड़े।

५. किसी भी मन्त्र का २१६०० बार नित्य प्रति जप करो। कम से कम गीता के एक अध्याय का नित्य पाठ करो। सत्य भाषण करो, क्रोध का संयम करो, उदारता पूर्वक दान करो। अपने से बड़ों की, साधुओं की, भक्तों की और गरीब व बीमार आदमियों की सच्चे भाव से सेवा करो। इन नियमों का पालन करने से तुमको शान्ति, आनन्द और निर्वाण की प्राप्ति होगी।

६. चित्त की एकाग्रता और ध्यान के द्वारा अपने हृदय में छिपे हुए परमात्मा का विकाश करो। समय को और जीवन को नष्ट मत करो।

७. मैं बार २ कहता हूं विवाह मत करो, विवाह मत करो, विवाह मत करो। विवाह संसार में सब से बड़ा बन्धन है। स्त्री स्थाई दुःख और चिन्ता का कारण है। जो कुछ भर्तृहरि, गोपीचन्द, बुद्ध और कुमार देव आदि ने किया वही तुम भी करो।

८. एकान्त सेवन करो। कुसंगी पुरुषों से अलग रहो। दिन में कुछ घण्टे मौन व्रत रक्खो।

९. जब तुम्हारे पुत्र हो जाता है तब ही तुम्हारी स्त्री तुम्हारी माता हो जाती है क्योंकि तुम्हारा ही आत्मा पुत्र रूप में जन्म लेता है। अपनी मनोवृत्ति को बदल डालो। जगन्माता के रूप में उसकी पूजा करो। आध्यात्मिक साधनों में लग जाओ। काम पर विजय प्राप्त करो। प्रातःकाल जब तुम

शय्या से उठो तो अपनी स्त्री के पैरों को स्पर्श करो और काली व जगन्माता का रूप समझ कर उसको साष्टांग दण्डवत करो। इस काम में लज्जा मत करो, इस अभ्यास के करने से तुम्हारे चित से स्त्री भाव निकल जावेगा।"

१०. पृथक् कमरे में पृथक् शयन करो। यदि तुमको काम अधिक सतावे तो जप की संख्या बढ़ा दो। दो सौ माला जपो या इससे भी अधिक ५७ हजार नाम तक जप करो। समस्त दिन उपवास करो, दूसरे दिन केवल दूध और फलाहार करो। साधारण प्राणायाम करो कुम्भक कम करो। प्राण को ६० बार ओ३म् के जप की संख्या तक रोके रक्खो। गीता के एक अध्यायका स्वाध्याय करो, मौन रक्खो, अपनी स्त्री से बात चीत न करो। हंसी छोड़दो, एकान्त कमरे में रहो। मन को किसी न किसी काम में लगाए रहो, यह बहुत आवश्यक है। ब्रह्मचर्य्य के लिए यह सब से बड़ा साधन है। खुशबूदार तेल, इतर न लगाओ; फूल मत सूंघो। सिनेमा, थीयेटर मत देखो। तख्त या चटाई पर शयन करो।

११. एक साधन को लगातार दृढ़ता से करो। डांवाडोल न हो, साधन में सावधान रहो। एक गुरु, एक स्थान और एक साधन को दृढ़ता से पकड़ो। भ्रमात्मिक चित्त को किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं होती।

१२. शोक, पश्चात्ताप, भय व शंका सब छोड़ दो। तुम पंचभूतों से बने हुए नाशवान् शरीर नहीं हो, तुम सर्वव्यापक आत्मा हो, सच्चिदानन्द स्वरूप व अजर अमर हो। तत् त्वम् असि, मेरे प्यारे पाठक तू वह ही है।

१३. ध्यान करो, ध्यान करो। एक मिनट भी व्यर्थ न खोओ। ध्यान से जीवन के समस्त दुःखों की निवृत्ति हो जावेगी। केवल यही एक सर्वोत्तम साधन है, ध्यान मन का शत्रु है। इससे मनोनाश अर्थात् मन की मृत्यु हो जाती है।

१४. जब तुम जप करने के लिए आसन पर बैठो तो गुदा को सुकेड़ो। यह सुषम्ना का छोर है। इस अभ्यास को हठ योग में मूल-बन्ध कहते हैं। यह एकाग्रता में बहुत सहायक है। इस अभ्यास से अपानवायु नीचे को गमन करने से रुकता है।

१५. प्राण को रोको जितनी देर सुख पूर्वक रोक सकते हो। इसका नाम कुम्भक है। इससे चित्त स्थिर होगा और एकाग्रता में सहायता मिलेगी और तुमको बहुत आनन्द अनुभव होगा।

१६. जब किसी मन्त्र का जप करो तो अर्थ सहित करो। राम, कृष्ण, शिव, नारायण सब का भाव सच्चिदानन्द, शुद्ध, पूर्ण ज्योति स्वरूप, अजर और अमर पूर्ण ब्रह्म परमात्मा है।

१७. जब तुम काम करो तो हाथों से काम करते हुए मन को भगवान् में लगाए रहो जिस प्रकार टाइप करने वाला करता है और स्त्रियें सफाई का काम करती हुई बातें करती रहती हैं इस प्रकार तुम एक समय में दो काम कर सकोगे। ऐसी अवस्था में हाथ का काम मशीन की भांति स्वाभाविक हो जावेगा, उस समय तुम्हारा चित्त दो काम कर सकेगा एक चौथाई चित्त तो काम में लगा रहेगा और तीन चौथाई भगवान् की सेवा में खर्च होता रहेगा। काम करते हुए भगवान् का नाम उच्चारण करते रहो।

१८. एक वर्ष कण्ठ में जप का अभ्यास करो, एक वर्ष हृदय में और एक वर्ष नाभि में, इससे साधारण कुम्भक आधी मिनट से ५ मिनट तक का अभ्यास हो जावेगा और तीन अध्यात्मिक चक्रों में एकाग्रता का अभ्यास हो जावेगा।

१६. जब तुम्हारा अभ्यास बढ़ जावेगा तो छिद्र २ और रोम २ से राम या नारायण का जप होने लगेगा। समस्त शरीर मन्त्र की कम्पन शक्ति से कम्पायमान हो जावेगा। तुम सदैव भगवान् के प्रेममें मस्त रहोगे। तुम्हारा शरीर पुलकित व रोमांचित हो उठेगा और तुम्हारी आखों से आनन्द के आसुँ बह निकलेगें। तुम अपने अन्दर अध्यात्मिक गौरव अनुभव करोगे। तुमको प्रोत्साहन मिलेगा, अनुभव होगा, अन्तर्दृष्टि मिलेगी तुम्हारा आनन्द बढ़ेगा और तुमको सहज ज्ञान की प्राप्ति होगी। तुम कविता बना सकोगे और तुमको सिद्धियों (दैवी शक्तियों) की प्राप्ति होगी।

१७. ज्ञान अध्यात्मिक अवस्था है। शेक्सपीयर अंगरेजी कवि) ही शेक्सपीयर को पहचान सकता है। विज्ञानी ही विज्ञानी को जान सकता है और ज्ञानी ही ज्ञानी को पहचान सकता है।

१८. ज्ञानी का व्यवहार (सदाचार) राग द्वेष, आसक्ति, अहंकार, स्वार्थ, कामवासना, और क्रोध रहित होता है। ज्ञानी के चित्त की साम्य-अवस्था से ही हम उसकी आन्तरिक अवस्था को कुछ जान सकते हैं। ज्ञानी को जानने के और भी कई चिन्ह होते हैं।

१९. योग वशिष्ठ, ब्रह्म सूत्र, और उपनिषदादि वेदान्त और अध्यात्म ज्ञान की पुस्तकों के स्वाध्याय से जो कि अद्वैत ब्रह्म की व्याख्या करती हैं अज्ञान (आवरण) के पर्दे को तोड़ डालो, अथवा शंकराचार्य के केवल अद्वैत सिद्धान्त को मानने वाले सन्यासियों और "तत्व मसि" "अहं ब्रह्मास्मि" आदि महावाक्यों में रमण करने वाले साधुओं के सत्संग से इस अभेदज्ञान को निवृत्त करो। अय ! मेरे प्यारे पुत्रो इसके सिवाय ज्ञान प्राप्ति का अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

२३. वैराग, और शम, दम व प्रत्याहार के साधनों से चित्त को अन्तर्मुख करो। इस बात की खोज करो कि तुम कौन हो ? इस मिथ्या मैं का विचार और विवेक से नाश कर डालो। आँख, कान और मुँह को बन्द करके बैठो। स्वाँस को धीरे से रोको। अनन्त सच्चिदानन्द का ध्यान करो और महत् अहम् का विचार करो। इस प्रकार अपने स्वरूप में स्थिति प्राप्त करो। यह "सहज अवस्था" है और यही "अद्वैत ब्रह्म निष्टा" है। अभ्यास करो, अनुभव करो और अपरोक्ष आध्यात्मिक अनुभव की प्राप्ति करो।

२४. तुमको दृढव्रती और पूर्ण निश्चय वाला होना चाहिए, तुमको एक दो या तीन बार किसी बात की भलाई बुराई अच्छी तरह सोच लेनी चाहिए परन्तु जब तुमने किसी बात का निश्चय कर लिया फिर उसको हानि लाभ की परवाह न करके अवश्य करना चाहिए। इस तरह तुम्हारा आत्मिक बल बढ़ जावेगा।

२५. हठ योगी अपना साधन या अभ्यास शरीर और प्राण से आरम्भ करते हैं। वह आसान, मुद्रा और प्राणायाम के द्वारा अभ्यास करते हैं। उनका सिद्धान्त यह है कि प्राण को वश करने से मन वश में होजाता है। यह अभ्यास मध्यम अधिकारी (तमोगुण वृत्ति वाले जिज्ञासु) के लिए है।

२६. राजयोगी अपना साधन सीधा मनके द्वारा आरम्भ करते हैं। वह अपनी वृत्तियों को रोकते हैं। वह चित्त को संकल्प रहित बनाते हैं। वह एक दम संयम का अभ्यास करते हैं अर्थात् धारणा ध्यान और समाधि लगाते हैं। वह यम व नियमों के अभ्यास से चित्त को शुद्ध करते हैं। हठ योग से मन का विकाश नहीं होता।

२७. ज्ञान योगी अपना साधन बुद्धि और

संकल्प के द्वारा आरम्भ करते हैं।

२८. तांत्रिक अपना साधन शक्ति द्वारा करते हैं।

२९. भक्त अपना साधन श्रद्धा, भक्ति आत्म समर्पण और विश्वास द्वारा आरम्भ करते हैं। भक्तों में उच्चभाव और उत्कृष्टता का प्रादुर्भाव होता है।

३०. तुम शरीर नहीं हो जो नाशवान है और पांच तत्वों से बना है और न ही इन्द्रियाँ हो और नहीं परिवर्तन शील मन हो। तुम इनसे प्रथक् हो। यह सब धोखा देने वाली उपाधियां हैं। तुम असंग अकर्ता अभोक्ता और साक्षी हो। चित्त को हथोड़ा बनाकर बार २ इन विचारों पर लगाओ यह वेदान्त का निष्कर्ष है और यही अद्वैत सिद्धान्त का निचोड़ है।

३१. इस प्राचीन प्रश्न का उत्तर कि "संसार क्यों बनाया गया है" आज तक न किसी ने दिया और न कोई दे सकेगा। हम नहीं जानते कि दुनियाँ क्यों बनी है, हम दुनियां को देख रहे हैं। संसार लीला मात्र है यह केवल एक प्रकार की व्याख्या है। अपने दिमाग् को इस प्रश्न से खराब न करो। जब तुम मायापर विजय प्राप्त कर लोगे और ब्रह्मको प्रत्यक्ष कर लोगे तो इस प्रश्न का उत्तर तुमको मिल जावेगा और तुम दैवी इच्छा को जान जाओगे।

३२. शरीर और संसार दोनों को भूल जाओ। ब्रह्म में स्थिर हो जाओ, ब्रह्म का ध्यान करो, ब्रह्म को अनुभव करो और ब्रह्म रूप बन जाओ। इन दो विचारों को खूब परिपक्व करलो। "ब्रह्म सत्य है" "जगत् मिथ्या है।"

३३. ओ३म्, ओ३म्, ओ३म्। ओ३म् सर्व व्यापक है, ओ३म् अनन्त है, ओ३म् अजर अमर है। इन विचारों को ओ३म् का उच्चारण व ध्यान करते हुए स्थिर करलो। अनुभव करो, अनुभव करो।"

३४. जब मनुष्य एकत्व को अनुभव करता है तो शोक और दुःख उसको कहां सता सकते हैं?

३५. ओह! सर्वत्र व्यापक और छिपी हुई जीवन धारा, ओह! सबको प्रकाशमान करने वाली गुप्त ज्योति, ओह! सबको मिलाने वाले प्रेम मुझ को अध्यात्म मार्ग दिखलाओ (प्रचोदयात्)

३६. पाप गलती है, पाप अज्ञान है। ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करके पाप से ऊपर उठने का प्रयत्न करो।

३७ यदि तुम अपनी आत्मा में दया का विकाश करना चाहते हो तो बुद्ध भगवान् के जीवन में संयम करो। तुम उदार दानी बनना चाहते हो तो कुन्ती के पुत्र कर्ण के जीवन पर ध्यान करो। यदि तुम अपनी आत्मा में सन्तोष का विकाश करना चाहते हो तो महात्मा गान्धी के जीवन का अध्ययन करो। यदि ब्रह्मचारी बनना चाहते हो तो भीष्म पितामह के जीवन पर विचार करो। इन महापुरुषों के जीवन पर कम से कम दिनमें एकबार अवश्य ध्यान करो। शनैः २ उनके गुण तुम्हारे जीवन में प्रविष्ट होजावेंगे॥

३८. नित्य प्रति कई बार इस प्रकार चित्त में विचार करो–ओ३म् दया ओ३म् सन्तोष, ओ३म् उत्साह, ओ३म् उदारता। इन शब्दों की मूर्ति को अपने चित्ताकाश में धारण करलो तुम्हारे अन्दर इन गुणों का विकाश होजावेगा। इस साधन से तुम प्रत्येक सात्विक गुण को धारण कर सकते हो।

३९. तुम्हारा अपना ही आदर्श और अपना ही सिद्धान्त होना चाहिये। साथ ही अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ और स्थिर रहना चाहिए। तुमको अपने उद्देश और सिद्धान्त से एक इञ्च भी विचलित

नहीं होना चाहिए।

४० "दूसरे के साथ वैसा व्यवहार करो जैसा तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें"। यदि इस सिद्धान्त को दृढ़ता से पकड़लो तो तुम उत्तम जीवन व्यतीत कर सकते हो। यह सब से उत्तम सिद्धान्त है। जब कोई अन्धा भिखारी तुम्हारे सामने खड़ा हो और तुम्हारी जेब में पैसे हों तो अपने आपको भिखारी और उसको दाता के रूप में समझ कर विचार करो कि तुम इस अवस्था में क्या चाहते? इस प्रकार विचार करने से तुम्हारा चित्त द्रवित हो जावेगा और तुम उसको कुछ न कुछ अवश्य दान दोगे। ऐसी अवस्था में भिक्षावृत्ति से तुम्हारे चित्त में जो घृणा होगई है वह दूर हो जावेगी। इस बात को सदैव याद रक्खो कि भगवान शंकर संसार में भिखारी के रूप में फिरा करते हैं। यह संसार उसकी लीला व विलास है॥

४१ किसी महान पुरुष या सन्त जैसे बुद्ध भगवान् या तुलसीदास जी व ज्ञानदेव जी को अपना आदर्श बनालो फिर उनके जीवन के अनुसार चलो और उनके अनुगामी बनो इस प्रकार करने से तुम्हारा जीवन भी वैसा ही बन जावेगा और बहुत शीघ्र तुम्हारी आत्मा का विकाश हो जावेगा॥

४२ विनय सब से श्रेष्ठ गुण है यह गीता का अमानित्वं सिद्धान्त है। बाइबिल में सन्त मैथ्यू ने लिखा है "धन्य वे हैं जो नम्र हैं क्यों कि वही पृथ्वी के मालिक होंगे" इस गुण के धारण करने से तुम अपने मिथ्याभिमान का नाश कर सकते हो। तुम समस्त संसार पर अपना प्रभाव डाल सकते हो और तुम चुम्बक की भान्ति हजारों पुरुषों को आकर्षित कर सकते हो। विनय स्वाभाविक हो, बनावटी विनय मक्कारी है यह स्थिर रहने वाला गुण नहीं है।

४३ यदि तुम सन्त महात्माओं, स्मृतियों और वेदों की शिक्षा पर पूरा २ अमल करो और यम नियमों का पालन करो तो तुम दुःख और कठिनाइयों से निवृत्त हो तुमको अविद्या और अज्ञान के पथ में न भटकना पड़े।

४४ अयमा त्मा, अपहत पाप्मा, विजरः विमृत्युः विशोकः, विजिघत्सः अपिपासः, सत्य कामः, सत्य संकल्पः, सः अन्वेष्टव्यः, सः विजिज्ञासितव्यः सः सर्वान् च, लोकान् आप्नोति, सर्वान् च कामान् यः तम्, आत्मानम् अनुविद्य, विजानाति इति। (छान्दो० अ० ८ ख० १)

हे सोम्य! जो आत्मा निष्पाप है, जरा रहित है, शोक रहित है, क्षुधा रहित है, अमर है, सत्यकाम है, सत्य संकल्प है। वही शास्त्र और आचार्य द्वारा खोजने योग्य है। जो योगी ऐसे आत्मा को साक्षात्कार करता है वह संम्पूर्ण लोकों को और सम्पूर्ण कामों को प्राप्त होता है। इस प्रकार किसी समय ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ प्रजापति ने शिष्यों से उपदेश किया।

प्रेमा भक्ति के साधन।

[लेः भक्तराज श्री मथुराप्रसाद जी]

आशक्ति

(गतांक से आगे)

जब रुचि बढ़ते २ मन का लगाव प्रियतम के साथ इस दर्जे का होजाय कि उस बिना संसारी सुख विषय भोग कुछ अच्छा न लगे यहाँ तक कि प्यारे बिना प्राणों का शरीर में रहना दुर्लभ प्रतीत

होवे तो उस अवस्था का नाम आसक्ति है। मजनू लैला पर आसक्त था। यहां तक दोनों का दिल एकताको प्राप्त हो चुका था कि फस्द लैलाकी खुली और लोहु (रुधिर) मजनु के शरीर से टपका (नुस्खे मजनू से टपका फ़स्द लैलाकी जोली) और शीरीं पर फ़रहाद आसक्त था जिस समय शीरीं के मरने की सूचना फ़र्हाद को मिली उसने शरीर में बसूला मार कर प्राण दे दिये और उसके से जो रुधिर बहा उससे पहाड़ पर शीरीं शीरीं यह अक्षर अंकित होगये–

भक्त प्रह्लाद जी तथा मीरांजी आदि प्रेमियों के चरित्र से विदित होगा कि उनकी आसक्ति किस दर्जे तक बढ़ी हुई थी ऐसे आसक्त ही प्रेमी कहलाने के योग्य हैं। विशेष विवरण इनका प्रेम की व्याख्या में किया जायगा। यहाँ आसक्ति दशा वाले किसी विरही का एक पद दिया जाना पर्य्याप्त समझता हूं-

पद–सखी बढ़ी विरह की पीर धीर कैसे तनको संभालेंगे।
जियरा धरत न धीर चीर तन के चीर डालेंगे॥
लाज कपट अहंकार जार के धूनी लगालेंगे॥ १॥
जोगन बन सब देह पै नेह विभूति रमालेंगे ॥ २॥
कृष्णकानको धरके ध्यान मुख अलख जगालेंगे ॥ ३॥
भजन को शृंगी नादबजा मोहन को बुलालेंगे ॥ ४॥
मनमाणिक दे भेट चरन छाती से लगालेंगे ॥ ५॥
अंसुअन धार की डोरी डार पिया को अटकालेंगे॥
त्रिकुटीमहल में सेज बिछा मोहन को सुलालेंगे ॥७॥
नैन कपाट मूंद कुफल श्रुती का लगालेंगे ॥ ८॥
जागें गे जब श्याम वहीं बंसी को बजा लेंगे ॥ ६॥
अनहद धुन सुन मस्त होय परमानन्द पालेंगे ॥१०॥
सुरत ठान मथुरेश पिया से तन तप बुझालेंगे॥११॥
बहुत दिनन के बिछुड़े पिया से मिलमौज मनालेंगे॥

आसक्ति के अनन्तर भाव (अठवीं सिढ़ी) का वर्णन किया जाता है। भाव मुख्य पांच हैं। शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य, मधुर। ५ मधुर को सखी भाव भी कहते हैं–

शान्त भाव–जिज्ञासुओं में साधारण रीत्या यह भाव आरंभ में स्वाभाविक पाया जाता है। प्रजागण जैसे अपने स्वामी किसी राजा महाराजा में प्रीति रख कर समझते, हैं कि उसकी आज्ञा के अनुकूल बर्ताव रखना अपना धर्म है उसके विरुद्ध आचरण में नाना प्रकार की आपत्ति और अशान्ति की संभावना है। इसी प्रकार परमेश्वर को अपना रक्षक मान कर उसकी आज्ञा में चलना अपना धर्म तथा कर्त्तव्य समझ कर शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। इसी को शान्त भाव कहते हैं।

इससे बढ़कर दास्य भाव है जिसमें स्वामी की सेवा अपना मुख्य धर्म समझ कर अहर्निश इसी विचार में रहते हैं कि सेवा के द्वारा स्वामी के कृपा पात्र बनें और निज तन मनको स्वामी के प्रसन्न करने में लगाये रक्खें। इस दास्य भाव में सब से अधिक मान श्रीअञ्जनी कुमार हनुमान् जी का है। इनसे बढ़ कर सेवक धर्म को किसी ने नहीं निभाया। सेवा के द्वारा श्री रघुवर महाराज रामचन्द्र जी को अपने आधीन बना लिया। इनकी महिमा कौन वर्णन कर सकता है। स्वयं भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी ने श्रीमुख से आज्ञा की है।

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि मारुते।
शेषाणामुपकाराणां तथापि ऋणिनो वयम्॥

अर्थात् हे हनुमान् तेरे एक एक उपकार के बदले में अपने प्राणों को न्योछावर करदूं तो भी तेरे बाकी रहे उपकारों का बदला कैसे चुकाऊं। इसलिये उन बाकी रहे हुए उपकारों के बदले में तेरा कर-जदार ही रहूंगा।

देखिये दास का दर्जा कितना बढ़ गया कि

स्वयं स्वामी उसके आधीन होगये इस कारण से शान्त भाव से यह दास्य उत्तम कक्षा का समझा जाता है। अब दास से बढ़कर तीसरा वात्सल्य भाव है अपना पुत्र मान कर जिस प्रकार श्रीयशोदा जी और नन्दबाबाने सर्वेश्वर भगवान् को लाड़ लड़ाये उनको अपने दृढ़ स्नेह के बन्धन में यहां तक बांध लिया कि ऊंखल तक से बांध लिया। जिसकी आज्ञाकी डोर में सूर्य चन्द्र आदि ग्रहबन्धे हुए हैं वो एक गोपी से बन्धन में आगया और जिसके भय से वायु चलता है समुद्र मर्यादा को नहीं छोड़ते वो परमात्मा गोपी यशोदा की भीति मान कर उस के हाथ में छड़ी देख कर काँपता है। इन्हीं बातों को देख कर ब्रह्मा जी ने कहा है कि नन्दयशोदा ने न जाने कैसा तप किया है जिनके आज्ञानुवर्ती स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उन्हें आनन्द दे रहे हैं।

वल्लभ कुल में उसी वात्सल्य भाव से भगवत् आराधन पूजन होता है। लाला को शीत काल में सरदी और ग्रीष्म ऋतु में गर्मी से बचाने में यथाशक्य लीन रहते हैं। चित्त उनका अहर्निश लाला के लालन पालन में ही लगा रहता है। मन्दिर की देहली ऊंची नहीं रखते कहीं बालक गिर न जाय एक भावुक ने कहा है।

श्रुतिमपरेस्मृतिमपरेभारतमन्ये भजन्तुभव भीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परंब्रह्म ॥

अर्थात् कोई श्रुति को कोई स्मृति को कोई भारत को मानो मैं तो नन्दराय गोप को बड़ा मानता और नमस्कार करता हूं। जिनके घरकी देहली पर परब्रह्म लटका हुआ है। यानी बालक होकर देहली को उलांघ नहीं सकता डर से लटक रहा है श्रीगोस्वामी वर्य वल्लभाचार्य ने कहा है:-

कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसी सा परामता।
चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत् सिद्धयै तनु वित्तजा ॥

सेवा का लक्षण किया कि है चित्त उसमें लौलीन रहे वात्सल्य भाव का दर्जा दास्य से ऊंचा है। अब सीधा भाव सख्य है। सखा भाव में यह उत्कर्ष है कि इसमें संकोच का लेश नहीं रहता। बराबरी का बर्ताव होता है ग्वाल बाल सखाओं के साथ भगवान् क्रीडा करते समय जब खेल में हार जाते तो जीतने वाले को अपनी पीठ पर चढ़ा कर नियत स्थान पर लेजाते और आपस में एक दूसरे के साथ कुश्ती करते तो कभी आप नीचे और ग्वाल बालक आप की छाती पर चढ़जाता। साथ खाना पीना, एक दूसरे की उच्छिष्ट लेने में कुछ संकोच न करना, गाली देकर बोलना इत्यादि चेष्टाओं से सख्य का गौरव प्रकट हो है।

अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण का विश्व रूप देख कर भयभीत हो के क्षमा मांगी है "विहार शैयाऽसनभोजनेषु" अर्थात् जो जो बे अदबी सखा भाव में हुई उसकी माफी चाही है। श्रीकृष्ण महाराज और सुदामा जी सांदीपन गुरु के यहाँ साथ पढ़े थे। उस सख्य भाव को भगवान् ने ऐसा निभाया कि सुदामा जी जब द्वारका पहुंचे तो उनका आदर सत्कार किस दर्जे का किया, सुदामा चरित्र से ज्ञान होता है और अपने समान वैभव देकर निहाल कर दिया। भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव को सखा बनाया, उसके लिये क्षत्रिय धर्म की मर्यादा तोड़ कर भी वृक्ष की ओट से बाली को मारा, मानो अपनेपर कलंक लगने की पर्वाह न करके भी मित्र का कार्य किया। सख्य भाव से भी ऊंची कोटिका पांचवा सखी भाव है, सो आगे वर्णन किया जायगा।

अपूर्ण

जीवन्मुक्ति के प्रयोजन ।

[ले० श्री महात्मा राम]

जीवन्मुक्ति के ज्ञान रक्षा, तप, विषस्वादाभाव, दुःखनिवृत्ति, सुखाविर्भाव, यह पांच प्रयोजन हैं। ब्रह्म का साक्षात्कार जिस पुरुष को उत्पन्न हुवा है उस तत्व वेत्ता पुरुष को जो संशय विपर्यय अनुपपत्ति है उसे ज्ञान रक्षा कहते हैं। वह ज्ञान की रक्षा जीवन मुक्ति के अभ्यास द्वारा सिद्ध होती है। यद्यपि शास्त्र प्रमाण में कुशल मुख्य अधिकारी पुरुष को ब्रह्म साक्षात्कार के अनन्तर संशय विपर्यय संभवता नहीं तथापि अन्य अधिकारियों को किसी निमित्त के वश से संशय विपर्यय संम्भव हैं। भ्रांत पुरुषों के वचन ही संशय विपर्यय में निमित्त हैं। जैसे कोई भ्रान्त पुरुष कहता है कि जो पुरुष अपने आपको ब्रह्मज्ञानी मानता है उसमें भी अज्ञानी पुरुषों के समान 'मनुष्योऽहं' 'ब्राह्मणोऽहं इस प्रकार का व्यवहार देखा जाता है तथा राग द्वेषादिक भी देखने में आते हैं। जो कदाचित् इस पुरुष को वेदान्त श्रवणादिकों से ब्रह्म का अपरोक्ष साक्षात्कार होता तो राग द्वेषादिक भी नहीं होते इसलिये श्रवणादिकों से इस पुरुष को आपात्ज्ञान ही होता है। इस प्रकार के भ्रान्त वाचाल पुरुषों के वचनों को सुनकर अव्युत्पन्न अधिकारी के ब्रह्म के साक्षात्कार होने पर भी शंसय विपर्यय हो सकते हैं। पदपदार्थ के ज्ञान से रहित पुरुष को अव्युत्पन्न कहते हैं, और कितने ही भ्रान्त पुरुष यों कहते हैं कि मरण पर्यन्त वेदान्त के श्रवण करने पर भी इस पुरुष को ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता, किन्तु वेदान्त वाक्यों से परोक्षज्ञान ही उत्पन्न होता है। क्योंकि किसी भी पुरुष में अपरोक्ष ज्ञान के चिह्न नहीं पाये जाते किन्तु परोक्षज्ञान के चिह्न पाये जाते हैं। अथवा इस वर्तमान काल में भी जो इस पुरुष को ब्रह्म का साक्षात्कार होता तो ब्रह्म के साक्षात्कार से आवरण सहित अज्ञान के निवृत्त होने से उस ज्ञानवान् पुरुष को ईश्वर के समान सर्वज्ञताआदि गुण प्राप्त होने चाहियें॥ जैसे पूर्वकाल में शुक सनकादिकों में सर्वज्ञादि गुण शास्त्र द्वारा सुने जाते हैं और यदि कोई यों कहे कि सर्वज्ञतादि गुण तपका तथा योग का फल है ज्ञान का फल नहीं है, पूर्व शुक सनकादिक तो तपस्वी तथा योगी हुवे हैं इसलिये उनमें ईश्वर के सर्वज्ञादि धर्म भी हुवे हैं वर्तमान के ज्ञानवानों ने कोई तप तथा योग नहीं किया है इसलिये सर्वज्ञतादिक धर्म नहीं है। सो यह कहना ही असंभव है क्योंकि जब तक पूर्ण तप तथा योग न होगा तब तक किसी को ब्रह्म का ज्ञान ही नहीं हो सकता। अतः वर्तमान काल में श्रवणादि द्वारा उत्पन्न हुवा ज्ञान आपात रूप ही है। अज्ञान की निवृत्ति करने में असमर्थ ज्ञान को आपात ज्ञान कहते हैं। ऐसे अनेक भ्रान्त पुरुषों के वाक्य सुन कर अव्युत्पन्न अधिकारी को ब्रह्मके साक्षात्कार होने पर भी संशय विपर्यय हो सकता है। इसमें यह उदाहरण है:-

अपनी देखी हुई वस्तु में भी दूसरों के कहने से संशय हो सक्ता है। जैसे एक राजा का भर्तृ नामक प्रधान मन्त्री था वह राजा को सब से ज्यादा प्रिय था, सदैव राजा के समीप रहता था, अन्य सब मन्त्री उससे ईर्षा द्वेष करते थे, जो कुछ भर्तृ कहता था राजा भी उसी तरह मानता था। एक

समय सब मंत्रियों ने मिलकर सलाह की कि जैसे भी होसके इस भर्तृ को निकलवाना चाहिये। यह बात निश्चय कर के गाँओं में चोर डाकुओं से मिल कर डाके गिरवाये, बदमाश लोग जहां जिसको देखें वहीं पर मारें और लूटलें, सारे देश भर में हा हा कार मचवादिया। निदान राजा के पास लोगबाग रोते चिल्लाते आने लगे तब राजा ने सब मंत्रियों को अपने पास बुलाकर आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र जाओ उनका ठीक २ प्रबन्ध करो। तब सब मन्त्रि बोल उठे श्रीमहाराज! क्षमा कीजिये हम लोग अपने घर में फालतू नहीं हैं हम थोड़ी २ तनख्वा वाले लोगों को बेमौत मरवाया जाता है। और जो खजाने को खाली किये देते हैं और कभी कुछ भी नहीं करते हैं उनको श्रीमहाराज भी कुछ नहीं कहते हैं। क्या हमको अपनी जान प्यारी नहीं है। यदि श्रीमहाराज के दरबार में इन्साफ है तो इस समय भर्तृ को जाना चाहिये आगे जो मर्जी हो वह किया जाय। भर्तृ वहीं पर था तुरन्त उठ खड़ा हुवा हाथ जोड़ कर महाराज के सन्मुख आया। राजा ने आज्ञा दी कि तुम जाओ जैसे हो सके प्रबन्ध करो भर्तृ बहुत अच्छा कह कर कुछ सैनिक लोगों को साथ लेकर गया। कुछ दिनों में भर्तृने योग्य प्रबन्ध कर दिया। इधर दूसरे धूर्त मंत्रियों ने राजा के पास आकर झूठी खबरें सुनाई सबने मिल कर कहा कि श्रीमहाराज भर्तृ से प्रबन्ध नहीं हो सका उसको डाकुओं ने मार दिया है अब जो आज्ञा हो सो किया जावे। राजाने, आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र जाओ और उचित प्रबन्ध करो। तदनन्तर मंत्रियों ने आपस में संगठन करके राज दरबार में आकर राजा को यह खबर सुनाई कि भर्तृ तो मर कर प्रेत बन गया है और जो कोई उनके पास जाता है उसके पीछे विकराल रूप धारण करके दौड़ता है। उसको काल रूप जान कर जो भाग जाता है वह बच जाता है नहीं तो प्राण हरण कर लेता है। यह बात मन्त्रियों से सुन कर राजा को विश्वास होगया। जब यह सर्व वृत्तान्त मंत्रियों का किया हुआ भर्तृ को मालूम हुआ तब भर्तृ को अपने मन में बड़ी ग्लानि हुई और हृदय में वैराग्य का संचार हो आया। विवेक रूपी सूर्य हृदयाकाश में उदय हो गया, अनेक विचारों की तरङ्गें उठने लगीं, सब भोग पदार्थ दुःख रूप तथा नश्वर दीखने लगे, मन में, यह निश्चय होगया कि अब मैं इस संसार के भोग पदार्थों में अपने अमूल्य समय को नष्ट नहीं करूंगा, किसी एकान्त स्थान में बैठ कर अपने कल्याण के लिये परब्रह्म परमेश्वर का स्मरण भजन करूंगा। ऐसा निश्चय करके एकान्त में निवास करने लगा। कुछ दिनों के पीछे राजा अपने मंत्रियों के सहित शिकार को गया, दैवयोग से जिस स्थान में भर्तृ रहता था वहां जा पहुंचा। भर्तृ ने दूर से राजा को पहिचान कर विचार किया कि मैं भी उठ कर राजा के पास कुछ दूर तक जाऊं। इतने में मन्त्रियों ने राजा से कहा कि श्रीमहाराज! यह देखो भर्तृ प्रेत रूप से आप के पास चला आरहा है इससे बचना चाहिये। ऐसा कह पीछे लौट कर भागे साथ ही राजा भी भयभीत होकर भाग निकला। भर्तृ के शरीर में भस्मी लगी हुई थी इसलिये राजा को प्रेम सा लगा। यद्यपि राजाने भर्तृ को अपनी आंखों से भी देख लिया। परन्तु दूसरे लोगों के कहने से उस राजाको संशय विपर्यय होगया। इसी प्रकार दूसरे कुतर्की लोगों के संग से ब्रह्म साक्षात्कार वाले पुरुष को भी संशय विपर्यय होसक्ता है। जब यह अधिकारी पुरुष एकान्त देश में स्थित हुआ जीवन्मुक्ति के अभ्यास में लगा रहेगा तब उन भ्रान्त पुरुषों का संग न

होने से संशय विपर्यय न भी होगा। अनधिकारी बहिर्मुख पुरुषों के संग से संशय विपर्यय की उत्पत्ति न होने देना इसी का नाम ज्ञानरक्षा है। यह जीवन्मुक्ति का प्रथम प्रयोजन है। [अपूर्ण]

वृक्ष महात्म्य।

(ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी)

वृक्षो! तुम्हें ईश्वर ने बनाया।
वेदान्त भी है गुरु ने पढ़ाया॥
योगाङ्ग आठों सिखला रहे हो।
अद्वैतता भी दिखला रहे हो॥ १॥
जो धातुयें हैं तनु में हमारे।
वे सर्व ही हैं तनु में तुम्हारे॥
मेरी तुम्हारी समता सुहाई।
प्रत्यक्ष भी है श्रुति मांहि गाई॥ २॥
सोते हुये से तुम दृष्टि आते।
जागे हुये हो जग को जगाते॥
मैं सो रहा था तुम सो गये थे।
जागा जहां मैं तुम जागते थे॥ ३॥
बोलो न चालो चुप साध ली है।
तूष्णीमवस्था यह ही सुनी है॥
आओ न जाओ रहते खड़े हो।
सिद्धावस्था अटल रहे हो॥ ४॥
बस्ती बसो या बन में रहो हो।
निस्संग सारे जग से रहो हो॥
रागी न द्वेषी सब में मिले हो।
तो भी जुदे हो तुम ही खरे हो॥ ५॥
सीखे तुम्हीं से हम दान देना।
सीखे तुम्हीं से सह दुःख लेना॥
वैराग्य का पाठ तुम्हीं पढ़ाया।
सच्चा सुधा भी तुमने बताया॥ ६॥
सीखी तुम्हीं से हमने समाधी।
पाई तुम्हीं से सब ऋद्धि सिद्धी॥
सीखे तुम्हीं से हम ईश भक्ति।
जाना तुम्हीं से पुनि मार्ग मुक्ती॥ ७॥
बोलो नहीं हो फिर भी बुलाते।
हारे हुओं के श्रम को भगाते॥
तप्ते हुओं की तप हो मिटाते।
पंखा सुखद ठंडक में सुलाते॥ ८॥
दानी महा हो दिन रात देते।
निष्काम पूरे कुछ भी न लेते॥
निस्वार्थ त्यागी उपकार कर्ता।
छोटे बड़ों के हितकार भर्ता॥ ९॥
पक्षी करें दारन पे बसेरा।
कीटादि का कोटर मांहि डेरा॥
छाया धनी आ पशु हों सुखारी।
घूमे फिरें हैं करते जुगारी॥ १०॥
छाया बिठाते फल हो चखाते।
पत्ते तुम्हारे बहु काम आते॥
फैला सुगंधी सबको बुलाते।
बस्ती बसा जंगल में दिखाते॥ ११॥
रागी विरागी अवधूत योगी।
आजन्म रोगी अथवा निरोगी॥
राजा भिखारी हर कोय आवे।
रीता तुम्हारे दर से न जावे॥ १२॥

वर्षा पड़े आसन से न भागो ।
पाला पड़े भी नहिं धैर्य त्यागो ॥
लू ज्येष्ठ की में तपते रहो हो ।
सीखो तितिक्षा हमसे कहो हो ॥१०॥
जीते मरों के तुम काम आते ।
कल्याण का मार्ग हमें सुझाते ॥
देते हमें हो उपदेश लाखों ।
कोलों तुम्हारा यश पुण्य भाषों ॥१४॥
ऐसा मुझे निश्चय होगया है ।
श्री कृष्ण प्यारा तुममें छुपा है ॥
नाहीं छुपा दर्शन दे रहा है ।
प्रत्यक्ष ही संमुख तो खड़ा है ॥१५॥
मिथ्याभिमानी नहिं देखते हैं ।
ज्ञानी अमानी सब पेखते हैं ॥
सारे जगत को रवि दीखता है ।
घुघू न देखे रवि दोष क्या है ॥ १६॥
धर्मी यहां वृक्ष लगावते हैं ।
आवें तहां ही सुख पावते हैं ॥
काटे तुम्हें दुष्ट सुखी न होवे ।
जावे तहां ही भर पेट रोवे ॥ १७ ॥
जो वृक्ष बोवे सुर लोक जाई ।
वासा करे वां बहु कल्प भाई !
आनन्द से नन्दन बाग मांई ।
सैरें करे ज्यों सुर लोक सांई ॥ १८ ॥
सींचे तुम्हें शीतल शांत होवे ।
पूजे तुमें जो सुख नींद सोवे ॥
निष्काम होके जल जो चढ़ावे ।
सो विष्णु पूजे पद विष्णु पावे ॥१९॥
पूजा तुम्हें लक्ष्मण जानकी ने ।
सींचा तुम्हें था रघुनाथ जी ने ॥
श्री कृष्ण पूजा बालराम ने भी ।
अत्रेय ज्ञानी अवधूत ने भी ॥ २० ॥
ना तोड़ पत्ता मत तोड़ डारी ।
भोला ! सभी को निज जान प्यारी ॥
कल्याण चाहे कर वृक्ष पूजा ।
है वृक्ष पूजा जगदीश पूजा ॥ २१ ॥

वह देवालय ।

[ले० श्री बी० एस० सराफ, बी० ए०, एल एल० बी०]

इस देवालय को देखने की वाञ्छा पहले ही से थी। पहले इस देवालय के देखने का कारण ऐहिक था। प्रायः सभी इस सांसारिक ध्येय को लेकर तीर्थ यात्रा पर आरूढ़ होते हैं। कहीं पापों के प्रायश्चित के लिये, कहीं एक अकारण तथा अनर्गल इच्छा की ही पूर्ति के लिये कहीं अपने नेत्रों को अन्तिम अवस्था में सफल करने के लिये, कहीं सिर्फ दर्शनों के लिये ही और कहीं सांसारिक मोह जालों से मुक्त होने के लिये। पर रामेश्वर द्वारिका पुरी आदि के स्थान तो निश्चित हैं यात्रा भी दूरी का प्रमाण भी है और अन्त में मनुष्य वहां पहुंच भी जाता है। इस यात्रा पर चले वर्षों व्यतीत हो गये अब तक प्रायः सभी तीर्थ कभी के पूरे हो गये होते पर नहीं कहा जासका कि इस यात्रा की कितनी दूरी पार हो चुकी आधी भी हुई या नहीं। जिस मूर्ति के पुण्य दर्शन की इच्छा हुई

थी उसका पावन निकेतन कहां है यह भी नहीं दीख पड़ता। "चले जाना मिल जावेगा, दर्शन भी हो जावेंगे" इसी वेद वाक्य को शिरोधार्य्य कर चल पड़ा, एक रस्ता भी ग्रहण कर लिया। पर पृथ्वी तो अनन्त है वह दैवी माया भी तो अनन्त है इसलिये थोड़ी ही दूर जाने पर सैकड़ों मार्ग मिले। व्याकुलता भी वैसी ही बढ़ गई क्योंकि केवल बढ़ते चले जाने का ही आदेश था और कुछ नहीं।

पर वह समय ही विचित्र था वह उत्साह भी वैसा ही अदम्य था फिर वहां चिन्ता को स्थान कहां। सचमुच दूरदर्शिता सच्चे प्रेम में कमजोरी लाती है। प्रेम तो एक आत्म विस्मृति का उत्कृष्ट बहाव है। उस बहाव में—उस महती इच्छा के उन्माद में, जीवन के साफल्य की सुमनोहर लाली में-मैं भी बह गया पर कुछ न पूछा प्रायः उन्माद बाधा नहीं देखता। अतः आगे बढ़ चला। साथ कुछ नहीं था सिर्फ एक लकड़ी। पहले तो खाने का सामान साथ लेकर चलता था पर फिर वह भी छोड़ दिया जो मार्ग में मिला उसी में सन्तोष कर लिया। ये खाली पैर, फिर कंटकों ने भी अपना धर्म निबाहा वर्षों घनों का नैराश्य अन्धकार छाया रहा, बादल गरजते रहे डराते रहे पर दामिनी का दर्शन न हुआ। नैराश्य में आशा का आविर्भाव भले न हो पर अन्धकार में आवृत रहती अवश्य। चलता रहा, परिवर्तन में दृढ़ विश्वास था क्योंकि परिवर्तन ही जीवन है। फिर यदि मैं जीवित हूं तो कोई न कोई अदृश्य परिवर्तन अवश्य कार्य कर रहा है चाहे कुछ समय बाद आविर्भूत हो। घटा बरसेगी अवसाद का कन्धकार उस निमल आकाश में विलीन हो जावेगा। घुमड़ी हुई घटा से पानी अवश्य आवेगा। चाहे सिर फूट जावे पर प्यासों की पिपासा और निर्धन अनाथों का नैराश्य दूर हो जावेगा। सिर फूटने का दुःख आनन्दोदधि की लहर में, पवित्र ज्योत्स्ना के बहाव में, अन्तर्लीन हो जावेगा।

वर्षों हो गए शरीर क्षीण होता जाता है पर उस प्रकाश का कोई चिह्न भी नहीं दिखता हां एक भीतर से आवाज आती है "बढ़े चलो"। एक दिन लौटने का भी विचार आया उस समय अवसाद अन्धकार के बादल भी कुछ कुछ विलीन होने लगे। वह आगे बढ़ने का निश्चय भी कम होने लगा। पर लौट कर जाऊं कहां? इतने वर्षों के बाद वहां का जीवन तो नवीन स्फूर्ति मय हो गया होगा पर मैं वैसा ही हूं ध्येय हीन तथा लक्ष्य प्राप्ति हीन। जब वहां का जीवन मुझे विसार देगा तब मैं ध्येय नष्ट कर आधे ही मार्ग की प्राप्ति पर आंसु बहाते२ कब तक शलक्षेप करूंगा। पर शायद मार्ग में ही प्राणान्त हो जावें क्योंकि मार्ग लम्बा है। यह एक लक्ष्य हीन बेपहचान दरिद्र की मृत्यु होगी। तब क्या करूं? चलो आगे ही चलूं? पर कोई आशा नहीं। इस अन्धकार में प्रकाश का आभास भी तो नहीं, आगे बढ़ने को कोई बाध्य करने वाली वस्तु भी तो नहीं दीखती। जिसका स्वरूप ही नहीं देखा, विचार भी जहां तक नहीं पहुंचता उस अनिश्चित का ध्यान कर कहां तक आगे बढ़ूं। विश्व एक स्वप्न सा प्रतीत होने लगा। निद्रा एक प्रबल आक्रमण था मैं सो रहा। जीवन की यात्रा प्रायः लम्बी रहती है फिर भी मनुष्य तू इतना अधीर क्यों है? अभी तो खेल शुरु हुए अधिक समय नहीं हुआ। सोम्य मिलन के अन्तिम दृश्य पर टक टकी क्यों लगाये है? तेरे अन्तिम दृश्य पर श्रद्धा भक्ति से मस्तक नवा देने वाले तेरी ओर बड़े करूण नेत्रों से देख रहे हैं।

पर मैं जाग पड़ा, न मालूम कब जाग पड़ा।

अन्धकार वैसा ही था सारे संसार को अपने विस्तृत वस्त्र से ढांक रहा था। पहले मुझे उस अन्धकार के मुखपर वही पुरानी निराशा और अवसाद का हास्य दीखा, घृणा भी मालूम पड़ी अन्त में मैंने देखा कि वह आशा के मन्द हास्य से कुछ मुकुलित किन्तु उसी काले वस्त्र में ढ़का हुआ है। उषा की प्राथमिक किरणों का भी एक मलिन आभास सा हुआ। कुछ उजेला हुआ पर यह वर्षों के बाद सिर्फ उषा का कुछ उजेला था भीतर से पक्षियों का मधुर कलरव होने लगा। तब तो मैं चौंक गया। सोचने लगा यह सब क्या हो रहा है? जीर्ण देह में दौड़ने वाली स्फूर्ति उठी। बहुत विचारा कि कुछ सोचूं कि यह वैचित्र्य क्या है पर ठहरा न गया।

उस चिर ईप्सित लालिमा को देखने की प्रबलता इतनी बढ़ी कि मैं अनन्त में अन्त कर देना ही आनन्द की चरम सीमा समझने लगा। मैं दौड़ा पर आज कांटे नहीं, आज विषाद नहीं, अन्धकार जनित मानसिक वेदना भी नहीं। यहां मार्ग भी न दीखा मैं चारों तरफ दौड़ने लगा। मैं कहीं से भी चलपड़ा और कहीं को भी आगे बढ़ता गया। प्रकाश बढ़ता गया सारा विश्व प्रकाश-मय दीखने लगा। पर कहां आ गया? अचानक खड़ा होगया बाजू में देखने लगा तो कुछ दीखा, अंश मात्र ही दीखा पर आशा भी दीखने लगी। जीवन दीखने लगा जीवन का साफल्य दीख गया निर्जन कांतार की कालिमा दीख गई सब कुछ दीखा जीवन का अवसाद भी दीख गया। आनन्द आया, मैं दौड़ पड़ा हवा हो गया। नहीं मालूम कब तक दौड़ा पर खूब दौड़ा, दुःख नहीं, वेदना नहीं विषाद नहीं, नैराश्य नहीं, कुछ नहीं।

पर अब कहां आ गया, मेरी आंखों से आंसू क्यों गिर रहे हैं? मैं पड़ा हूं असहाय हूं। जर्जरता है पर इतनी वेदना कैसी। मन्दिर था, थोड़ा ही दूर था एक सीढ़ी लगी थी, हां एक ही थी चारों ओर चित्र संगीत हो रहा था भीतर एक अप्रतिम आभा थी। किसकी थी सो न देख सका। द्वार भी मेरी ही ओर था। पर मेरी आंखों में आंसू थे। आनन्द था पर तब भी निराशा थी। जीवन का साफल्य मानता था फिर भी आत्मा आगे को मन्दिर की ओर उड़ती थी। प्रायः सब कुछ हो गया फिर भी आंसू हैं। आनन्द प्राप्ति की शान्ति नहीं, शान्ति की निस्तब्धता नहीं। क्षुब्ध हो दौड़ना चाहता हूं पर नहीं दौड़ सका। पर यह व्याकुलता क्यों? प्रभो! मन्दिर पास है, क्या इसलिये? इस जीर्ण शरीर में मन्दिर तक जाने भर की शक्ति देदो। फिर वहां जो चाहे हो जावे। मन वहां तक जाता है, कल्पना की एक मूर्ति भी देखता है पर तेरी मूर्ति नहीं दिखती, मेरे मन को नेत्र दे दो इतने दूर आ जाने पर यही लालसा है।

प्राण धीरे धीरे जारहा है। मैं अधीर हूं नेत्र निश्चेष्ट हैं पर वहीं हैं। उत्तर नहीं मिलता क्या इच्छा है प्रभो! उत्तर फिर नहीं। फिर दीन का प्रश्न ही क्यों? बस तेरी कृपा का अन्त मेरा भी अन्त।

महात्मा गांधीजी के उपदेश *

(१)

'विद्यार्थी का कर्तव्य है आत्मदर्शन करना। जिससे आत्मदर्शन होसके ऐसी पढ़ाई होनी चाहिये। शिक्षक ऐसे हों, जिनको आत्मदर्शन का कुछ खयाल हो और उसके लिए सतत प्रयत्न करते हों। आत्मिक विकाश जीवमात्र की सेवा करने से ही हो सकता है।'

(२)

"मेरा जहाज तो स्वयं चलने वाला है। मार्ग का नकशा मेरे पास नहीं होगा। हो क्यों? यह भक्ति का विरोधी जो प्रभु का नचाया नाचता है, उस के लिए आरम्भ क्या? जो वस्तु जिस समय आ पड़े उसमें तन्मय हुआ जाय, तो बहुत है। लेकिन यह तो तत्व की चर्चा हुई। इसका क्या करें?" सूतर आये तेम तुं रहे; जैम तेम करीने हरीने लहे।"

(३)

" × × × सबकी परीक्षा हो रही है, ईश्वर हमें पूर्णाहुति के योग्य समझे, यही हमारी कामना है। जिसके हिस्से जो सेवा आवे वह उसे कर गुजरे, यही बस है।' × ×

(४)

'जिसे किसी बात की चाह नहीं है अथवा है तो केवल सेवा की ही है, वह शान्त क्यों न रहे जीवमात्र की दया का अर्थ जीवमात्र की सेवा न हो तो दया का अर्थ ही कहां रहा? और जीवमात्र की सेवा तो उसके साथ एकता का अनुभव करने ही से हो सकती है और जब तक स्वयं शून्य न बनें तब तक एकता का अनुभव नहीं हो सकता। सौ बात की एक बात यह है कि शून्य बनने में ही आत्मदर्शन की चाबी है।'

(५)

'यह याद रहे कि हममें से कोई भी जो सेवा हमसे बन पड़े, उसका अभिमान न करे। जो कुछ हो सकता है वह कम ही है यही समझना चाहिये। दुनियां में हम कर्ज उगाहने को पैदा नहीं होते कर्ज अदा करने के लिये आते हैं। जिसे कर्ज अदा करना है उसे शरीर रूपी उपाधि की आवश्यकता भी नहीं। वह मुक्त प्राणी है। कर्जदार सोलह आने अदा करे, तो भी उसके लिये अभिमान का कोई कारण नहीं रहता। इतना करने पर वह आराम के लायक बनता है। ऋण से उऋण होना अर्थात् बन्धन मुक्त होना है।'

(६)

'तुम्हारी सबकी सम्भाल रखने वाला ईश्वर है गीता में भगवान् का वचन याद करना वह सब को लागू होता है। हजारों वर्ष पहले यह प्रार्थना की गई थी, सो बात नहीं है हम सब द्रौपदी के के समान निराधार हैं। ईश्वर के पास नर और नारी नहीं हैं। नर शरीर में और नारी शरीर में रहने वाली आत्मा एक ही है। हम मोहवश शरीर की आकृति भिन्न पाकर असमंजस में पड़ जाते हैं और विकारवश भी होते हैं। यदि अन्दर रहने वाले जीव को पहचान लें तो यह समझ कर कि सब

* यरवदा जेल से महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आश्रम वासिओं को हाल ही में जो पत्र लिखे हैं उनका कुछ अंश पाठकों के लाभार्थ दिया जाता है। (सम्पादक)

जीव एक ही हैं, सबकी सेवा ही में ओत प्रोत होकर रहें। तब फिर आसपास के विचार हम पर हमला करके हमें हैरान नहीं करेंगे।'

(७)

'दुनियां में उद्योग प्रधान है क्योंकि शारीरिक उद्यम करना मनुष्य का धर्म है। जो उद्योग नहीं करता वह चोरी का अन्न खाता है और आश्रम का उद्योग जितना अपने लिये है उतना ही परमार्थ के लिये है।

(८)

"विचार विकारी चित्त ही में आते हैं। यहां विकार का व्यापक अर्थ करना चाहिये। विकार का अर्थ परिवर्तन हेर फेर। समाधि में अच्छे से अच्छे विचार के भी आने की आवश्यकता नहीं रहती। फिर भी निर्जीव दशा नहीं होती। ईश्वर को विचारना नहीं होता, क्योंकि वह निर्विकार है। विचार के अभाव का अर्थ जड़ता नहीं, बल्कि शुद्ध चैतन्य है। इसका वर्णन नहीं किया जासकता यह अनुभव-गम्य है। यह नहीं कि मैंने इसका अनुभव किया है। मैं इस चीज़ को श्रद्धा से मानता हूं। कुछ झांकी भी की है वह भी कह दूं।"

(९)

"सत्य की खोज करते हुए अहिंसा की जरूरत देखी, फलतः उसके अभ्यास का प्रयत्न किया। उसमें से अपरिग्रह की आवश्यकता पैदा हुई। लेकिन ब्रह्मचर्य के बिना सब अधूरा मालूम हुआ। वैसा करने पर सत्याग्रह का पता चला, उससे निर्भयता आयी। उसके बाद अस्वाद को रक्खा है बल्कि अब देखता हूं कि ब्रह्मचर्य के पालन के लिये उसकी आवश्यकता का अनुभव किया था जिस हद तक इन गुणों का अभ्यास कर सका हूं वह गहरे विचार और भारी प्रयत्न का फल है। इन सबकी तह में ईश्वर पर अविचल श्रद्धा तो है ही।"

ब्रह्मचारी बनो।

[ले० श्री "गुप्ता"]

यद्यपि इस गम्भीर विषय पर अनेक विद्वानों के महत्वपूर्ण लेख बराबर निकला करते हैं पर यह एक ऐसा विषय है जिस पर जितना लिखा जाये सब थोड़ा है और यही विचार कर मैंने अपनी क्षुद्र लेखनी उठाई है यद्यपि इस विषय में मेरा प्रयास आकाश छूनेवाली पीपिलिका के समान है। आशा तथा विश्वास है कि सहृदय पाठक मेरे दोष की ओर ध्यान न दे लेख के गुण ही का ग्रहण करेंगे।

एक समय था जब इसकी शिक्षा बाल काल ही में दी जाती थी और वह भी अन्य शिक्षाओं के साथ २ और यही कारण था कि उन्हें इस विषय का इतना ठोस ज्ञान हो जाता था कि उन्हें इसके लिये पुनः स्मरण दिलाने की आवश्यकता नहीं। पर दुर्भाग्य से समय ने पलटा खाया। हमारी इन्द्रियां इतनी प्रबल हो उठीं कि हमें जरूरत पड़ी कि हमें ब्रह्मचर्य पालन की बार २ शिक्षा दी जाय और दैनिक जीवन का एक अंग ही बना दिया जाय तथा पुस्तकें भी छपवाई जायें। पर इतने पर भी इस अतृप्त राक्षस ने अपना मुंह इतना बड़ा पसारा है कि हम भारतवासियों को क्षण २ पल २ निगल जाने को तैयार है। इतने पर भी हमारी आंखें नहीं खुलतीं। भला इस से बढ़ कर हमारी मूढ़ता और पतन अधिक क्या हो सकता है।

इस आधुनिक शताब्दी का तो फिर कहना

ही क्या है। व्यभिचार का नया २ आविष्कार किया जा रहा है और वीर्य नष्ट करने के लिये नीच से नीच उपायों का अवलम्बन किया जारहा है यहाँ तक कि मन चले लोग अप्राकृतिक और अमानुषिक तरीकों से भी बाज़ नहीं आते। इस का फल ही बड़ा विषैला फल रहा है और फलेगा। छोटे २ बच्चे भी इस नाशकारी काल के गाल से नहीं बचने पाये। भला १४ वर्ष के बच्चे से कब आशा की जाती थी कि वह संसार के काम लायक नहीं रह जायेगा। शरीर में बल नहीं, चेहरे पर लावण्य नहीं, और नेत्रों में तेज नहीं। पढ़ना लिखना तो भार होजाता है और उनकी सन्तान भी संसार का बोझ रूप ही हो जाती है। उन्हें अवनति का ध्यान भी है पर वे वीर्य को पानी के समान नष्ट करने के लिये विवश कर दिये गये हैं और इसी प्रकार एक रोज़ काल के विकराल गाल में चले जायेंगे। यह मर्ज स्कूल के विद्यार्थियों में दिन २ तेज़ी से बढ़ रहा है और अब तो परमात्मा ही रक्षा करें तो बिचारे बचें।

अपना २ रोना तो सभी रोते हैं। चारों ओर से आवाज़ भी आती है कि निकट भविष्य में सर्वनाश होने की सम्भावना है पर इस के रोकने का समुचित उपाय नहीं होता और यदि होता भी है तो प्रायः रक्षक ही भक्षक देखे जाते हैं। यदि कुछ सच्चरित्र व्यक्ति अपने जीवन को इसी के लिये दे दें तो आशा है कुछ सुधार हो जाये पर उन्हें आदर्श होना चाहिये तभी उनका प्रभाव कोमल हृदय बच्चों पर पड़ सकता है अन्यथा नहीं।

यदि किसी बिगड़े हुये या बिगड़ते हुये बालक या नवयुवक को अपनी देख रेख में रख कर उसे ब्रह्मचर्य की महत्ता और वीर्यनाश की हानि उसके हृदय पटल पर चित्रित कर दी जाये तो बहुत कुछ सम्भव है कि उसका भावी जीवन बहुत अंशों में सुधर जाये और इस प्रकार उसका सुधार कर उसके द्वारा सुधार का काम आगे बढ़ाया जाये। कोई भी सदाचारी पुरुष के सामने ऐसे दुराचारी बालक अपनी करुणा कहानी सुना सकते हैं क्योंकि वे तो उस दुष्ट से अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं पर वे स्वयं छोड़ने से या तो विवश हैं या वीर्यनाश की हानियों से परिचित नहीं हैं।

इसलिये जो वीर्यरक्षा की महिमा समझते और तदनुकूल आचरण करते हैं उन्हें चाहिये कि जिन अबोध या सुबोध बालकों को इस दुराचरण में देखें उन्हें समझा बुझाकर उन्हें सन्मार्ग पर ले आवें। ऐसे बालकोंको पहचानने में अधिक कठिनाई नहीं एक बार ध्यान से देखने और उन से कुछ बातें करने से ही उनके आचरण का आभास मालूम हो जाता है और यदि उनका जीवन सुधार दिया जाये तो वे आजीवन कृतज्ञ बने रहते हैं और अपने सुधारक को बड़ी प्रतिष्ठा तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। यह ठीक है कि ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है पर बूंद २ से तालाब भर जाता है। कार्य आरम्भ करने से ही समाप्त होता है, हाथ पर हाथ रक्खे रहने से मुंह में ग्रास भी नहीं जाता।

यदि बालकों को छोटी आयुसे ही अच्छी २ शिक्षा दी जायें और लगभग १६ वर्ष की आयु में ब्रह्मचर्य का ज्ञान करा दिया जाये तो आशा की जाती है कि हमारे बहुत से सुनहले पौदे इस विषैले कीड़े के आक्रमण से बच जायें। मुझे यह लिखते हर्ष होता है कि मुझे यह अवसर मिला है कि मैंने दुराचारी लड़कों को सन्मार्ग पर आते देखा है। कुछ ऐसे विद्यार्थी भी मिले जिन्होंने

अपने जीवन से हाथ धो डाला था पर परमात्मा की दया से वे इस सुखमय जीवन को बिता रहे हैं। सुधारक को भी इस में जो आनन्द मिलता है वह वही जान सकता है।

महात्माओं के वाक्य

१-परमात्मा के दर्शन हृदय की आंख से होंगे।

२-वाद विवाद समय का नष्ट करना है। भगवान् के चरण कमल की उपासना करके परमानन्द की प्राप्ति करनी चाहिये। (शंकराचार्य)

३-सत्य से सम्पत्ति की प्राप्ति नहीं होगी किन्तु स्वतन्त्रता की।

४-सब युगों में विसालता की इच्छा के कारण लोग परमात्मा को भूलते रहे हैं। कौन नहीं जानता कि लालच के वश पक्षी जाल में फंस जाते हैं?

५-परमात्मा के ज्ञान और परमात्मा के प्रेम में बहुत अन्तर है।

६-तू बोलना छोड़ दे फिर परमात्मा जिसने वाणी दी है स्वयं बोलेगा। (शम्स तबरेज़)

७-जो परमात्मा से प्रेम करता है उसको वह तीन गुण प्रदान करता है १-समुद्र की सी उदारता २-सूर्य का सा परोपकार ३-पृथ्वी की सी विनय। (सूफी कहावत)

८-हे परमेश्वर मैं नहीं जानता कि तुझ से क्या मांगूं, तूही इस बात को जान सकता है कि मुझे किस चीज की आवश्यकता है। मैं तो अपने को तेरे अर्पण करता हूं। मेरी मरजी तो यह है कि मैं तेरी इच्छा के अनुकूल वर्ताव करने के योग्य बनूं।

९-मैं चुप हूं, ऐ आत्माओं के आत्मा तू बोल जिसकी इच्छा मात्र से परमाणु २ नृत्य कर रहा है। (शम्स)

१०-जब हृदय की ग्रन्थी टूट जाती है तो जीव अमर होजाता है। (उपनिषद्)

११-बुद्धिमान मित्र ही सब से उत्तम पुस्तकें हैं क्योंकि वह वाणी और दृष्टि दोनों से उपदेश करते हैं।

१२-इस बात को सदैव ध्यान में रक्खो कि इच्छा बन्धन का कारण है और निरिच्छा स्वतंत्रता का हेतु है। (योग वशिष्ठ)

१३-जिस भाव से तुम दूसरों की सेवा करते हो उसी भाव से तुम्हारी सेवा की जावेगी।

१४-मैंने अपनी मेहनत और ईमानदारी की कमाई में से एक भिखारी को सुवर्ण का दान दिया। उसने उस स्वर्ण को खर्च कर दिया और पहिले की भान्ति भूखा और शरदी से काँपता मेरे पास आया मैंने उसे फिर दिया परन्तु वह फिर उसी अवस्थामें आया, अन्त में मैंने उसे भगवान् की भक्ति का उपदेश दिया उस से वह भगवान् का भक्त और सम्पत्तिशाली बन गया और उसने मांगना छोड़ दिया। (फारसी कविता)

१५-मनुष्य में अज्ञान की अपेक्षा अहंकार अधिक है।

१६-मैं प्रत्येक फूल में उस के दर्शन करता हूं। बादल में वही गरजता है और पक्षियों में वही बोलता है। (राम)

१७-हम प्रकृति के स्वामी नहीं बन सकते हां उसके सेवक हो सकते हैं।

१८-विश्वास मनुष्य का जन्म सिद्ध स्वभाव है। विश्वास मनुष्य में ऐसा ही स्वभाविक है जैसे वृक्ष में पत्ते।

१९-हमारी आवश्कतायें इतनी बढ़ गई हैं कि आत्मा के अनुभव के लिये हमको अवकाश ही नहीं मिलता। इसका यही अर्थ है कि हमने धर्म को तिलांजली दे दी है और परमात्मा के तरफ से मुंह फेर लिया है। (रवीन्द्र)

२०-बुद्धिमान् को उपदेश की आवश्यकता नहीं है और मूर्ख उपदेश सुनना पसन्द नहीं करता परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि जो आदमी पहले उपदेश सुनना पसन्द नहीं करते हैं वह पीछे बहुत पछताते हैं।

२१-प्रत्येक मनुष्य का हास्य वदन, और मीठे शब्दों से स्वागत करो।

२२-जीवन दुःख से खाली नहीं है क्योंकि धूप के साथ साथ लगा रहता है हमको यह शिकायत नहीं करनी चाहिए कि गुलाब में कांटे हैं वरन परमात्मा को इस बात का धन्यवाद देना चाहिए कि कांटों में फूल बनाए हैं।

२३. अपने उद्देश को पूर्ण करते हुए मरजाने को मौत नहीं कहते। वह धन्य हैं जिन्होंने अपने उद्देश की पूर्ति में जीवन लगा दिया है। इससे उत्तम धन्य कर्म नहीं है॥

२४- उदार बनना चाहते हो तो मितव्ययी बनो, नेता बनना चाहते हो तो वाद विवाद न करो वीर बनना चाहते हो तो नम्र बनो।

२५-जो आदमी, किसी बात को नहीं जानता और यह भी नहीं जानता कि मैं अनभिज्ञ हूं वह मूर्ख है उससे दूर रहो।

२६- प्रयास करने वालेके लिए सब कुछ सम्भव है, आशावादी के लिए इससे अधिक आसान है, और प्रेम करने वाले के लिए बहुत ही आसान है और अभ्यास करने वाले और धैर्य रखने वाले के लिए तो कुछ भी असम्भव नहीं।

मैत्रेयी उपनिषद्

बृहद्रथ नाम के राजा ने अपने बड़े पुत्र को राज्य दिया और यह समझकर कि यह शरीर नाशवान् वैराग्य वृत्ति से अरण्य में गया। वहाँ जाकर उसने परम तप का आरम्भ किया। वह ऊंचे हाथ करके सूर्य के सामने देखा करता था। एक सहस्र वर्ष के अन्त में राजा के पास एक मुनि आया। यह मुनि बिना धूयें के अग्नि के समान तेज वाला था और तेज से सबको जलाता हो ऐसा दीखता था। वह आत्म ज्ञानी था और उसका नाम शाकायन्य था॥ "हे राजन! तू खड़ा हो, खड़ा हो और वरदान चाहता हो सो मांग"। राजा प्रणाम करके कहने लगा "हे भगवन्! मैं आत्मज्ञानी नहीं हूं और आपतो तत्त्वज्ञानी हैं। मैं आपसे श्रवण करने की इच्छा रखता हूं सो आप मुझे उपदेश दीजिए"॥

मुनि ने उत्तर दिया। समझ ने में न आवे ऐसा यह परम प्रश्न तू मत पूछ, जो कुछ दूसरा वरदान मांगना हो सो माँग ले। शाकायन्य मुनि के चरण स्पर्श करके यह गाथा कहने लगा॥

"कितने ही बड़े समुद्र सूख जाते हैं, पर्वतों के शिखिर टूट जाते हैं, ध्रुव पदार्थ चलाय मान होते हैं, वृक्षों के स्थान पर स्थल होजाता है। पृथ्वी जल में डूबजाती है, देवता अपने स्थान से भ्रष्ट होजाते हैं। संसार मे इस प्रकार के काम और भोग किस काम के हैं कि जिनके आश्रय से

बार २ आवागमन हुआ करता है ?

इससे आप मेरा उद्धार करने योग्य हैं, जैसे कूप में जलसे ढका हुआ मेंडक हो तैसे ही मैं इस संसार में पड़ा हूं, हे भगवन! आप हमारा उद्धार करने वाले हैं। हे भगवन! यह शरीर मैथुन से उत्पन्न हुआ है, ज्ञान से रहित है और केवल नरक ही है। मूत्र द्वार से निकला हुआ है, हड्डियों से बिना है, मांस से मंढा गया है, चर्म से सीया गया है, विष्टा, मूत्र, वात, पित्त, कफ, मज्जा, मेद, वसा और अनेक मल से व्याप्त है। इस प्रकार शरीर की स्थिति होते आप ही हमारी गति रूप हैं॥

तब भगवान् शाकायन्य प्रसन्न होकर राजा से कहने लगे "हे महाराज इक्ष्वाकु वंश में श्रेष्ठ बृहद्रथ! तू आत्मज्ञानी है, कृतकृत्य है, तू मरुत इस नाम से प्रसिद्ध है, तेरे आत्मा का वर्णन इस प्रकार है, "देख जो शब्द स्पर्श वाले अर्थ हैं, वे अनर्थों के तुल्य शरीर में स्थिति करके रहते हैं, इन शब्दादि अर्थों में जो आसक्त है वह भूतात्मा परं पद का स्मरण नहीं कर सकता तप के सामर्थ्य से सत्व की प्राप्ति होती है, सत्व से मन की प्राप्ति है, मन से आत्मप्राप्ति है, और आत्म साक्षात्कार से पुनरावृत्ति नहीं होती। जैसे ईन्धन रहित अग्नि अपनी उत्पत्ति विषय लय होजाता है तैसेही वासना का क्षय होने से चित्त अपने कारण में लय होजाता है" जिनका चित्त अपने कारण में लय हो जाता है उनका मन फिर इन्द्रियों के विषयों में मोह को प्राप्त नहीं होता। उन सत्य निष्ठ पुरुषों के मन की वितृियाँ केवल प्रारब्ध के अनुसार उठती हैं इसलिए वे मिथ्या हैं। यह चित्त ही संसार है इसका प्रयत्न से शोधन करना चाहिए जिस प्रकार का चित्त हो पुरुष उसी मय होजाता है यह सनातन रहस्य है॥ चित्त के प्रसाद से शुभाशुभ कर्म्म का नाश होता है और प्रसन्न आतमा में स्थिति पाकर अव्यय सुख को भोगता है॥ जिस प्रकार प्राणी का चित्त आसक्ति वाला होकर विषियों में लुब्ध होता है, इसी प्रकार ब्रह्म में आसक्त हो तो कौन बन्धन से मुक्त न हो? हृदय कमल मे परमात्मा का ध्यान करना चाहिए, यह परमात्मा साक्षी रूप है और शुद्ध चित्त वाले को परं प्रेमका विषय है। वह मन और वाणी का अविषय है। वह निर्विशेष परमात्मा केवल सत्ता मात्र प्रकाश हो, ऐसा एक प्रकाश रूप है और भावना के परे है। वह हेय और उपादेय से रहित है, वह ध्रुव अत्यन्त गम्भीर, तेज और तम से रहित, संकल्प का अभाव रूप, आभास से रहित और मोक्ष स्थान रूप है॥ वह नित्य शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला सत्य रूप, सूक्ष्म, विभुरूप, अद्वितिय, आनन्द का सागर रूप, परम रूप, सोहमस्मि इस नाम वाला प्रत्यक् और संशय से रहित है। आनन्द स्वरूप, स्वाश्रम में रहने वाला, सब प्रकार के संग से रहित और जगत् को नाना रूप देखने वाले ऐसे मुक्त में आपत्ति किस प्रकार प्रवेश करसके। वर्णाश्रम और आचार से मुक्त अज्ञानी अपने २ कर्म के अनुसार फल प्राप्त करते हैं। जो वर्णादि धर्म्मों का त्याग करता है वह पुरुष स्वानन्द से तृप्त होता है। वर्णाश्रम धर्म्म और अवयव युक्त अपना शरीर आदि और अन्तवाला और केवल कष्ट ही को देने वाला है। अपनी तथा पुत्रादि की देह में जो अभिमान से रहित होता है वह सुख करने वाले अनन्त में स्थिति करता है॥

आत्म चिन्तन

[ले० श्री लालचन्द जी]

एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ।
एकाकी चिन्तमानोहि परंश्रेयोऽधिगच्छति ॥

(निर्जन स्थान में अकेला आत्मा का हित चिन्तन करे, क्योंकि अकेला ध्यान करता हुआ परम श्रेय को पाता है।

सब साधनों से बढ़कर आत्मचिन्तन है। आत्मचिन्तन से आत्मा की उन्नति के विषय में विचार अभिप्रेत है।

प्रतिदिन के कामों में लगा हुआ मनुष्य प्रायः यह नहीं सोचता कि वह उन्नति की ओर जारहा है अथवा अवनति की ओर। इसी लिये यह आवश्यक है कि प्रति दिन प्रातः सायंकाल नित्य उपासना पूरी लग्न से कीजाय। उपासना में जब तक सम्यक् ध्यान की ओर रुचि नहीं बढ़ाई जाती तब तक उपासना से जीवन चर्या पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता।

अपना जीवन कैसा है, यह प्रश्न प्रत्येक आत्मोन्नति के इच्छुक के सामने आना चाहिये। प्रायः लोग अपने आप ही अपने आपको गिराते हैं और गिरते हुए भी यह नहीं जानते कि हमारा पतन होरहा है। आत्मचिन्तन अपनी वास्तविक अवस्था को जानने के लिये परम आवश्यक है। मनुष्य मनन शील होकर शुद्ध और पवित्र हो जाता है मन के भेद खुल जाते हैं, बुद्धि निर्मल हो जाती है, चित्त शान्त हो जाता है, और सत् विवेक उत्पन्न होता है। धीरे धीरे एकाग्रता लाभ होती है, संशय दूर होते हैं। और साधक की कठिनाइयां दूर होजाती हैं, पुरुषार्थ बढ़ता है, कर्तव्य करने में प्रमाद नहीं होता, मुख उज्ज्वल होता है। अन्य मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता है। साधक अपने महत्व को समझने लगता है। अपने आपको गिराता नहीं, वीर्य्य वान् होता है, शक्ति बढ़ती है क्योंकि शक्ति का दास नहीं होता। ज्यों ज्यों शक्ति बढ़ती है त्यों त्यों साधक में कार्य कुशलता और साथ ही नम्रता बढ़ती जाती है।

विजयी जीवन के लिये आत्मचिन्तन परम साधन है। इस साधन के अभ्यास से सच्चे साधक कठिन से कठिन रुकावटों के तोड़ने में समर्थ हुए हैं। यह साधन सुगम है। साधक को चाहिये कि अपने सारे अंग ढीले करके सीधा बैठे और नासिका द्वारा पहिले अन्दर की अपान वायु निकालदे फिर नासिका द्वारा ही पूर्ण श्वास ले। प्रश्वास अवश्य पेट के निचले भाग तक जाय और प्रश्वास करे तो पहिले पेट के निचले भाग ही खाली हो, फिर मध्य का और पश्चात ऊपर का स्थान बहुत स्वच्छ, रमणीक और भयरहित होना चाहिये, स्थान की वायु अवश्य शुद्ध होनी चाहिये। इसी लिये उपवन अथवा नदी का तट उत्तम समझा जाता है। श्वास प्रश्वास करते हुए मन से ओ३म् का जप करना चाहिये, और ध्यान मस्तिष्क के पिछले भाग में लगाना चाहिये। शरीर का यह भाग सब शक्ति का केन्द्र है। इस स्थान पर ध्यान लगाने से शक्ति का ह्रास नहीं होता, ज्ञानतन्तुओं में उत्तेजना नहीं होती मस्तिष्क ठंडा रहता है, शक्ति बढ़ती है, घबराहट नहीं होती कठिनाई प्रतीत नहीं होती, पुरुषार्थ

करने में रुचि बढ़ती है।

इस प्रकार साधन करने के पश्चात साधक के सामने दिन अथवा रात्रि भर के कृत्य और विचार आने चाहियें और प्रत्येक कृत्य और विचार को विवेक की कसोटी से परख कर उसे जांचना चाहिये कि वे कृत्य या विचार अपनी उन्नति में बाधक तो नहीं हो रहे। यदि बाधक हों तो तत्काल प्रायश्चित करके आगे के लिये व्रतपति भगवान का का सहारा लेकर व्रत धारण करके अपने पहिले असत्य जीवन से सत्य जीवन की ओर आने की दृढ़ धारणा करनी चाहिये। निरंतर इस प्रकार अन्तर ध्यान होने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और साधक प्रेम का अधिकारी होता है। बिना पवित्र हुए प्रेम नहीं हो सकता। इस साधन को आत्म चिन्तन कहते हैं, यह साधन अत्यन्त आवश्यक है।

स्वाध्याय और शास्त्रचर्चा की महान् योजना।

[एक हज़ार दिनों का शुभ अनुष्ठान]

यह जान कर 'भक्ति' के प्रत्येक धर्म प्रेमी पाठकको प्रसन्नता होनी चाहिये कि गुजरात-प्रान्त के अहमदाबाद के समीप स्थित नड़ियाद नामक स्थान में श्रीश्रीसन्तराम-मन्दिर के व्यवस्थापक और धर्मप्रेमी महानुभावों के शुभ प्रयत्न से गत माघ शुक्ला १३ सम्वत् १९८८ से एक महान् मंगल अनुष्ठान आरम्भ हुआ है, जो पूरे एक हजार दिन की अवधि समाप्त करके संवत १९९१ की माघ शुक्ला १५ को समाप्त होने को है। इस महान् अनुष्ठान में वेद, उपनिषद्, षड्दर्शन, महाभारत, रामायण, गीता और अष्टादश पुराणका पारायण और व्याख्यान कराने का निश्चय सञ्चालकों ने किया है। कार्य-क्रम इस प्रकार है-

काल-माघ शुक्ला १३ सं० १९८८ से माघ शुक्ला १५ सम्वत् १९९१ तक।

अनध्याय-प्रत्येक पक्षकी द्वादशी को और प्रति वर्ष कार्तिक कृष्ण दशमी से कार्तिक शुक्ला चतुर्थी तक।

(इन दिनों में पुराणादि शास्त्रीय विषयों पर सामान्य व्याख्यान और समालोचनाएँ तो होती ही रहेंगी)

व्याख्यान-(१) रामायण, महाभारत तथा ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत्, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड,-अठारह पुराणों के क्रमशः ४०० श्लोकों का प्रतिदिन व्याख्यान

(२) ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य बृहदारण्यक और कैवल्य-इन एकादश उपनिषदों, गीता, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, सांख्य, योग-इन छः दर्शन और योगवाशिष्ठ के क्रमशः १०० श्लोक-सूत्र या मन्त्रों का प्रतिदिन व्याख्यान।

पारायण-वेद, महाभारत, रामायण, अठारह पुराण, उपनिषद् षड्दर्शन और योगवाशिष्ठ प्रतिदिन एक हज़ार श्लोक, सूत्र या मन्त्र के हिसाब से पूर्ण पारायण।

इसके सिवा गो० तुलसीदास जी कृत श्रीरामचरितमानसके गीताके सम्पुट सहित (आदि

अन्त में गीता-पाठ और बीचमें श्रीरामचरित मानस का पूरा पाठ) एक हजार पाठका आयोजन किया गया है। गीता और रामचरित मानस का विशेष प्रचार हो तथा नड़ियाद के बाहर रहने वाले दूर-दूर के प्रेमी स्त्री-पुरुष इस महान् कार्य में भाग ले सकें, इस उद्देश्य से यह निश्चय किया गया है कि किसी भी स्थान के कोई भी भक्त स्त्री-पुरुष अपनी इच्छानुसार ऊपर लिखे सम्पुट रामायण के १ से १० तक पारायण कर उसकी भेंट दे सकते हैं। जो इस परम पुण्यकार्य में भाग लेना चाहें वे सूचना देने की कृपा करें। 'भक्ति' के भक्त पाठक गीता रामायण के पारायण में शामिल होकर कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ावें और पुण्य सञ्चय करें, यह सप्रेम अनुरोध है। देशकी वर्तमान धर्मविमुख अवस्था में ऐसा आयोजन बहुत ही आवश्यक और आदरणीय है धर्मप्रेमी, सदाचारी, पण्डित, वक्ता और सन्त-महात्मागण लोक संग्रहार्थ ही इस ब्रह्म-यज्ञ में पधारकर अपने ज्ञानामृत से श्रोताओं को शान्ति प्रदान करें और शास्त्रों के सम्बन्ध में फैली हुई अज्ञानताको नष्ट करने में सहायक बनें तो सञ्चालकगण उनके बड़े कृतज्ञ होंगे और देशका बड़ा कल्याण होगा। जो महानुभाव जिस समय जिस ग्रन्थपर कहने का विचार कर नड़ियाद पधारना चाहें, वे—मन्त्री श्रीमहासत्र-व्यवस्थापक-मण्डल, सन्तराम-मन्दिर, नड़ियाद (गुजरात) को सूचना दें।

भजन

मैया मेरी मैं नहीं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पीछे मधुबन मोहि पठायो॥
चार पहर वंशीवट भटक्यो सांझ परे घर आयो।
ग्वाल बाल सब बैर पड़े हैं बरबस मुख लपटायो॥
तू जननी मन की अतिभोरी उनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद भयो है जान परायो जायो॥
यह ले अपनी लकुट कमरिया, बहुतहि नाच नचायो।
सूरदास तब विहंसि यशोदा लै सुत कंठ लगायो॥

२

ऊधो कहा करैं ले पाती।
जब नहिं देखयो गुपाल लाल को बिरह जरावत छाती।
जानति हौं तुम मानती नांही तुमहूं श्याम संघाती॥
निमिस २ मो बिसरत नाहीं शरद सुहाई राती।
यह पाती ले जाहु मधु पुरी जहं बसे श्याम सुजाती॥
मनुज हमारे उहां लैगये काम कठिन सर घाती।
सूरदास प्रभु कहा चलत हो कोटिक बात सुहाती॥

३

हरि तेरो भजन कियो न जाई।
कहा करूं तेरी प्रबल माया लहर देति बहाई॥
जबै जाऊं साधु संगति कछुक मन ठहराई।
ज्यों गयन्द अन्हाई सरिता बहुरि रहे सुभाई॥
वेस धरि २ हरयो परधन साधु साधु कहाई।
जैसे नटुआ लोभ कारण करत स्वांग बनाई॥
करौं यतन न भजौं तुमको कछुक मन उपजाई।
सूर हरि की प्रबल माया देति मोहि लुभाई॥

४

बार २ जसुमति सुत बोधति।
आऊं चन्द तोहि लाल बुलावे॥
मधु मेवा पकवान मिठाई।
आपु न खैहें तोहि खवावे॥
हाथहिं पर तोहि लोने खेले।
नहिं धरनि बैठावे॥
जल भाजन कर लेजु उठावति।
या में तनु धरि आवे॥
जलपुट आनि धरनि पर राख्यो,
गहि आन्यो चन्दा दिखरावे॥

सूरदास प्रभु हंसि मुसकाने।
बार बार शेठ कर नावे॥

५

जागिये गुपाल लाल आनन्द निधि नन्द बाल।
यशुमति कहे बार २ भोर भयो प्यारे॥ टेक॥
नैन कमल से विसाल, प्रीति वापिका मराल।
मदन ललित वदन ऊपर कोटि वारि डारे॥ १॥
उगत अरुन विगत शर्वरी शशांक, किरन हीन।
दीपक मलीन छीन दुति समूह तारे॥ २॥

६

सुन्दर वर संग ललना बिहरी वसन्त सरस ऋतु आई।
लै २ छरी कुँवरि राधिका कमल नयन पर धाई॥
द्वादश तन रतनारे देखियत चहुंदिशि टेसू फूले।
मौरे अमुवा अरुद्रुम बेलि मधुकर परिमल भूले।
सरिता मन्दगति रवि उत्तर दिशि आयो।
दोय उमंग कोकिला बोली विरहिन बिरह जगायो॥
ताल मृदंग बीन बांसुरी ढफ गावत मधुरि बानि।
देत परस्पर गारि मुदित हैं तरुणी बाल सयानी॥
सुरपुर नरपुर नागलोक जल थल क्रीड़ा रस पावे।
प्रथम बसन्त पंचमी बाला सूरदास गुण गावे॥

७

हरि संग खेलत हैं सब फाग।
यहि मिस करत प्रगट गोपी उर अन्तर को अनुराग॥
सारी पहिरि सुरंग कसि कंचुकी काजर दै दै नैन।
बनि २ निकसि २ भई ठाढ़ी सुनि माधौ के बैन॥
ढफ बंसुरी खंज अरु महुअरि, बाजत ताल मृदंग।
अति आनन्द मनोहर बानी गावत उठत तरंग॥
एक कोहा गोविन्द ग्वाल सब एक कोहा ब्रजनारि।
छांडि सकुच सब देति परस्पर अपनी भाई गारि॥
मिलि दश पांच अली चलि कृष्णहिं गहि लावती उचकाए
भरि अरगजा अबीर कनक घट देति शीस ते नाए॥

८

कहाँ लौं बरणौं सुन्दरताई।
खेलत कुंवर कनक आँगन में नैन निरख छबि छाई॥
कुलहि लसत सिर श्याम सुभग अति।
बहु विधि सुरंग बनाई॥
मानो नव घन ऊपर राजत।
मघवा धनुष चढ़ाई॥
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन।
मोहन मुख बगराई॥
मानों प्रगट कंज पर मंजुल।
अलि अवलि फिरि आई॥
नील स्वेत पर पीत लाल मनि।
लटकनि भाल रुनाई॥
सनि गुरु असुर देव गुरु मिलि मनु।
भौम सहित समुदाई॥
दूध दंत दुति कहि न जाति।
अति अद्भुत एक उपमाई॥
किलकत हंसत दुरत प्रकटत।
घन में बिद्युत छुपाई॥
खंडित बचन देत पूरन सुख।
अल्प जल्प जल पाई॥
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित।
सूरदास बलिजाई॥

९

बूझत श्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति काकी है बेटी देखि नहीं कहुं ब्रज खोरी।
काहे को हम ब्रजतन आवति खेलति रहती अपनी पोरी
सुनतिरहतिस्रवणवहि नंन्द ढोटाकरतरहतमाखन कीचोरी
तुम्हारो कहा चोरि हम लैहैं खेलत चलो संग मिली जोरी
सूरदासप्रभु रसिक शिरोमणि बातन भुरई राधिका भोरी